कणिका में प्राउट

(नवम खण्ड)

श्री प्रभात रंजन सरकार

कणिका में प्राउट

(नवम खण्ड)

श्रीप्रभातरञ्जन सरकार

सूचीपत्र

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ द्वारा सर्वस्वत्व संरक्षित

(श्राचार्य समन्वयानन्द अवधूत द्वारा

मूल बंगला से अनुदित)

-: प्रकाशक :-

आचार्य कृष्णत्मानन्द अवधूत

(प्रकाशन सचिव)

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ (रजिष्टर्ड)

भि, आई, पि, नगर, तिलजला

कलकत्ता-३६

प्रथम संस्करण- जून, १६६१ ई०

मुद्रक :

आचार्य पीयूषानन्द अवधूत

आनन्द प्रेस, तिलजला, कलकत्ता-३६

Rs.-12.00

प्राप्तिस्थान :

सूचीपत्र

आनन्द मार्ग प्रचारक संघ भि, आई, पि, नगर,

तिलजला

कलकत्ता-३६

শ্রীপ্রভাত রঞ্জন সরকার

रोमन संस्कृत वर्णमाला

विभिन्न भाषाओं का ठीक - ठीक उच्चारण करने के लिए तथा द्रुतलेखन के प्रयोजन को समझकर निम्नलिखित पद्धति से रोमन संस्कृत वर्णमाला का प्रवर्त्तन किया गया है

অ	আ	ই	ঈ	উ	ঊ	ঋ	ৠ	ঌ	ৡ	এ	ঐ	ও	ঔ	অং	অঃ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
a	á	i	ii	u	ú	r	rr	lr	lrr	e	ae	o	ao	aḿ	ah

ক	খ	গ	ঘ	ঙ	চ	ছ	জ	ঝ	ঞ
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ka	kha	ga	gha	uṋa	ca	cha	ja	jha	iṋa

सूचीपत्र

ট	ঠ	ড	ঢ	ণ	ত	থ	দ	ধ	ন
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
t́a	t́ha	d́a	d́ha	ńa	ta	tha	da	dha	na

প	ফ	ৰ	ভ	ম
प	फ	ब	भ	म
Pa	pha	ba	bha	ma

য	র	ল	ব
य	र	ल	व
ya	ra	la	va

শ	ষ	স	হ	ক্ষ
श	ष	स	ह	क्ष
sha	śa	sa	ha	kśa

सूचीपत्र

অঁ জ্ঞ ঋষি ছায়া জ্ঞান সংস্কৃত ততোঽহং

अँ ज्ञ ऋषि छाया ज्ञान संस्कृत ततोऽहं

aṋ jiṋa rśi cháyá jiṋána saḿskrta tato’haḿ

a á b c d d́ e g h i j k l m ḿ n

ń ṋ o p r s ś t t́ u ú v y

समग्र विश्व में बहुत प्रचारित रोमन लिपि के २९ अक्षर मात्र से संस्कृत भाषा का ठीक - ठीक उच्चारण किया जाना सम्भव है । इसमें युक्ताक्षर का भी झमेला नहीं है । अरबी , फारसी और अन्यान्य f, q , gh , z , प्रभुति अक्षरों का प्रयोजन रहता है , संस्कृत में नहीं । शब्द के मध्य या शेष में '

ड ' , ' ढ ' यथाक्रम ' ड़ ' और ' ढ़ ' ' रूप में उच्चारित होते हैं । ' य ' (जहाँ ' य ' का उच्चारण ' इ ' , ' अ ' होता है) के समान वे भी कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं हैं । प्रयोजन के अनुसार और असंस्कृत शब्द लिखने के समय ŕa और ŕha व्यवहार किया जा सकता है ।

गैर- संस्कृत शब्द लिखने के लिए दिए गए दश अतिरिक्त अक्षर

ক়	খ়	জ়	ড়	ঢ়	ফ়	য়	ল়	ৎ	অঁ
क़	ख़	ज़	ड़	ढ़	फ़	य़	ल़	त्	अँ
qua	qhua	za	ŕ	ŕha	fa	ya	lra	t	aṋ

सूची-पत्र

समाज का तात्पर्य

भावजड़ता से सावधान

नदी और सभ्यता

मानवता नवयुग के द्वार पर

मानव इतिहास और सामूहिक मनस्तत्व

जीवन के सभी क्षेत्र में पुनर्जागरण का प्रयोजन

[प्रमा-१ "त्रिगुणात्मिका सृष्टि मातृका अशेष त्रिकोणधारा"]

[प्रमा-४ परिशिष्टांश]

[सर्वात्मक विमुक्ति की नव्य-नीति-चेतना]

समाज का तात्पर्य

समाज शब्द का भागवत अर्थ है- जहाँ बहुत मनुष्य एक साथ आगे की ओर चल रहे हैं। इन सत्रों की बुद्धि और शक्ति एक समान नहीं होती। इसलिये एक मनुष्य की अपूर्णता को दूसरे के द्वारा पूर्ण करना पड़ता है।

विभिन्न मनुष्य को विभिन्न प्रकार की योग्यता और क्षमता रहती है। किसी को शारीरिक क्षमता है, किन्तु बुद्धि नहीं है, किसो को बुद्धि है, किन्तु काम करने की क्षमता नहीं है। किसी को क्षमता भी नहीं है, और न है बुद्धि, इसलिये वह ऊध्र्वतन के निर्देश से धीरस्थिर भाव से खूब सुन्दर कार्य करता जाता है। इस तरह नाना प्रकार के नाना गुण सम्पन्न मनुष्य, हमलोग अपने चारों तरफ देख पाते है। जागतिक दृष्टिकोण से विचार करने से बोलना पड़ेगा, कि, इस पृथ्वी पर पूर्णतः कोई स्वनिर्भर नहीं है । प्रत्येक किसी न किसी रूप से दूसरे के ऊपर निर्भरशील है। हटकोई अपनी अपनी अपूर्णता दूसरे की सहायता से पूरा करते हैं। जभी भी कोई विराट जनगोष्ठी इस तरह से पारस्परिक भारढोने के माध्यम से अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने को चेष्टा करती है, तभी हम उसे 'समाज' कहते हैं ।

समाज कैसा हो ? ये ऐसे हैं जैसे यात्रियों का एकदल तीर्थयात्रा में चला हो । उसी दृश्य की कलना करने की चेष्टा करो। मानो, तीर्थ यात्रियों में एक आदमी को हैजा हुआ है। बाकी लोग क्या उसको पीछे छोड़कर आगे चले जायेंगे ? नहीं, ऐसी बात मन में लाना भी उचित नहीं है। वरन् वे लोग एक दो दिन के लिये यात्रा स्थगित कर देंगे, और उसको स्वस्थ करेंगे। यदि वह दुर्बलता के कारण चलने में असमर्थ होतो, उसे कंधे पर लेकर चलना शुरू करेंगे। यदि किसी को रास्ते में पैसा-कौड़ी खतम हो जाय तो अन्यलोग अपने हिस्से से उसकी सहायता करेंगे। सब मिलकर सब कुछ बाँट कर, एक साथ होकर एक स्वर से यात्रापथ का गाना गाते हुये - आगे बढ़ते जायेंगे। इस तरह एक साथ चलने के आग्रह में वे लोग, उनके जीवन के बीच के थोड़े बहुत भेद-

विभेद को भूल जाते हैं। जो मत-'विभिन्नता उनके तीन पुरुष से पारिवारिक मामला-मुकदमा में फंसा कर रखा था, वे सब भूल जाते हैं। इसी प्रकार, इस तरह के मामले-मुकदमे में, वादी विवादी (मुद्दई-मुद्दालेह), इतने जिद ठान देते हैं कि जमीन के लिये, उनके बीच इतनी मुकदमेबाजी होती है कि, जमीन के दाम से दस-बोस गुणा अधिक रुपया खर्च करने में भी वे पाँव पीछे नहीं डालते। इस तरह मनुष्य को एक साथ चलने से, मनुष्य में सहयोगितामूलक मानसिकता जगती है, जो मनुष्य के मन को व्याप्ति की राह में ले जाता है। उनके मनमें जो नोचता-हीनता बाधादि रहते हैं, वे चूर्ण-विचूर्ण हो। जाते हैं। मैं फिर बोलता हु, कि समाज, ऐसी मनुष्य की गोष्ठीबद्ध तीर्थ यात्रा है, जहाँ एक साथ चलने से सभी विस्मयकर व्यष्टित्व के अधिकारी होगे, जो उनलोगों के

वैयष्टिक और सामूहिक जीवन की सभी समस्याओं के समाधान करने में सहायता करेगा।

'समाज' शब्द का प्रकृत अर्थ कहने से यह स्पष्ट होगा कि अभी भी मनुष्य यथार्था समाज प्रतिष्ठा करने में सक्षम नहीं हुआ है। यदि भारत केवल भारतीयों के लिये एक समाज रचना करे, पाकिस्तान पाकिस्तानियों के लिये और इंगलैंड अंग्रजों के लिये, हो सकता है तोन अलग समाज बना सकते हैं, किन्तु हमलोग उसको मानव-समाज नहीं कह सकते हैं। विभिन्न गोष्ठियों में विभक्त एक समाज, स्वाभाविक रूप से, दूसरे के प्राणरस का शोषण कर अपने को पुष्ट करना चाहेगा। थोड़ा स ध्यान देने ही से देखोगे, इस पृथ्वी के किसी किसी भाग में, जो तथाकथित समाज प्रतिष्ठा की प्रवेष्टा चल रही है, वह एकान्त भाव से कुछ मतवाद

और विश्वास की भित्ति के ऊपर निर्भर कर, और वह केवल नगण्य संख्यक लोगों के लिये। इस प्रकार की सामाजिक चेतना, सभी प्रकार की गोष्ठियों में सुप्त अवस्था में रहती है, वह चाहे भारतीय हो, या पाकिस्तानी हो अथवा अंग्रेजों की हो। वे लोग अपनी क्षुद्र गोष्ठियों की चिन्ता में ही मग्न रहते हैं। यह वास्तविक रूप में कुछ बाहरी प्रभाव के लिये उस प्रकार का भारतीय, पाकिस्तानी, अंग्रेज की चेतना का रूप लेता है। एक पराधीन जाति की सामाजिक चेतना इतना तीब्रभाव से अनुभव नहीं किया जाता। जैसा कि किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध युद्ध के समय होता है। स्वाधीनता के बाद फिर यह सामाजिक चेतना पा लेता है। समाज विरोधी विच्छिन्नता-वादी प्रयास किन्तु वहीं रुक नहीं जाता है। एक ही देश के जनगण विभिन्न इलाकों में एक ही सामाजिक गोष्ठीबद्धता में नहीं रहते

हैं। ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ औरु अन्यान्य विभिन्न वर्ण के मनुष्य, अपनी अपनी जाति के अन्तर्भुक्त कहकर मानते हैं।

भेद-भाव-मूलक समाजविरोधी मानसिकता यहीं खतम नहीं होती है। इतना हो नहीं, राजपूत गोष्ठी में भी बुन्देली, राठौड़, सिसोदिया, चौहान प्रभृति छोटी छोटी गोष्ठियाँ रहती हैं। सामाजिक क्षेत्र में ब्राह्मणों में पश्चगौड़िय, तथा पञ्चद्राविड़ीय गोष्ठियाँ पारस्परिक प्रधानता प्राप्ति की चेष्टा में असामाजिक आचरण में लिप्त रहते हैं। विचारकर देखो, समाज कहाँ जाकर खड़ी है। इसलिये जोर देकर बोलता ह - कि मनुष्य अभी भो प्रकृत मानव समाज बना नहीं पाया है। तीर्थ यात्री की तरह यथार्थ मानसिकता लेकर एकसाथ चलना नहीं सीखा है।

यद्यपि विभिन्न क्षुद्र क्षुद्र गोष्ठियाँ क्षुद्र स्वार्थ द्वारा प्रेरित होकर विशेष विशेष परिस्थितियों में एकसाथ काम करती है तब भी वृहत्तर सामाजिक लक्ष्य लेकर सामान्यतम कार्य भी नहीं करती हैं। तब क्या हमलोग एक एक क्षुद्र परिवार को ही समाज की संज्ञा देकर घोषणा करेंगे? संकीर्ण आत्नस्वार्थ की भित्ति से पारस्परिक समझौता करके आगे चलने को यदि समाज नाम देना पड़े, तब इस प्रकार का समाज, पङ्गु, रोगग्रस्त और असहाय मनुष्य का, कोई सुव्यवस्था नहीं कर सकता । क्योंकि प्रायः सभी क्षेत्रमें इनके द्वारा कोई, किसी प्रकार का उपकार प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये यह बात बोलना यथेष्ट नहीं है कि इस प्रकार का आगे चलना विच्छिन्नतावादी दृष्टिभंगीं का आपातः सामूहिक रूप है; कारण है, इससे समष्टि से व्यष्टि को

विच्छिन्न हो जाने की पूर्ण रूप से सम्भावना हो जाती है। सभी मनुष्य जव पारस्परिक प्रम के बन्धन में आबद्ध हो हाथ में हाथ मिलाकर सामने की ओर बढ़ चलेंगे, केवल तभी हमलोग उसको 'समाज' कह कर घोषणा कर सकते हैं। तुम-लोग कुछ दाम्भिक और उद्धत लोगों को बोलते सुनोगे, "मैं किसी की सहायता नहीं चाहता हूँ, मैं स्वयं अपने को चला सकता हूँ। मैं किसी की बात में नाक नहीं घुसेड़ता हूँ, और कोई मेरी बात में नाक घुसेड़े, यह मैं पसन्द नहीं करता हूँ।" इस तरह के मन्तव्य की अपेक्षा बेवकूफी और कुछ नहीं हो सकती। रोग छुड़ाने के लिये औषध्रि और सेवा-शुश्रूषा का प्रयोजन है, मृतदेह संस्कार के लिये पड़ोसी को सहायता का प्रयोजन है और नियमित खाद्य-वस्त्र जुटाने के लिये कृषक और तन्तुवाय की सहायता की निहायत जरूरत है।

याद रखो, इस विश्व में, कोई सृष्ट सत्ता स्वनिर्भर नहीं है- अकेले कोई कभी वच नहीं सकता। एक दूसरे के साथ, एक अति जागतिक, तथा अच्छेद्य बन्धन में आबद्ध है; कहीं बन्धन सुस्पष्ट है और कहीं अस्पष्ट है। पारस्परिक सम्पर्क की दिशा में विन्दुमात्र मूल और मतानैक्य विश्व में भयावह विपर्यय ला सकता है। इस महान सृष्टि में अत्युज्ज्वल सूर्य से लेकर एक क्षुद्र चींटी पर्यंत आस्तित्विक मूल्य है। सभो मिलकर सृष्ट हुआ है विश्व-परिवार। इस तरह मानव समाज में एक पङ्गु और मुमूषु रोगी का मूल्य एक प्रभावशाली विशिष्ट व्यष्टि की तुलना में कम नहीं है। कोई उपेक्षनीय नहीं है। किसी के प्रति सामान्यतम अविचार भी पूरी तरह से सामाजिक स'रचना को तोड़कर चूरचार कर दे सकता है।

इस जीव जगत में ऐसे कितने मौल सिद्धान्त हैं जो प्रत्येक जीव के पक्ष में समान भाव से प्रयोज्य है और जिसका समाधान सबको मिलकर करना होगा। इन सबों को जीवन के साधारण वैशिष्टय के हिसाब से और जीवित प्राणी के धर्म के विचार से किया जा सकता है। उन सब समस्याओं के सुष्ठु समाधान के ऊार निर्भर करता है जीव जगत् का सामग्रिक स्वास्थ्य ।

पारस्परिक सहयोगिता की भित्तिपर जबतक समस्या का समाधान होगा, समाज के पक्ष में तब तक वह कल्याणकर होगा। ध्यान देना होगा कि इस बात में अधिकार और दायित्व सब का समान है। अधिकार और दायित्व के सम्बन्ध में चेतन का अभाव सामाजिक जीवन में मनुष्य को विपर्यय की ओर ढकेल देता है।

इसके फलस्वरूप जीव जगत के नियंत्रण का भार गोष्ठी विशेष के हाथ में चला जाता है। उस गोष्ठी विशेप के शोषण के चाप से समाज का प्राणरस सूखना आरम्भकर देता है। प्रकृति प्रदत्त सम्पद में जीव जाति का समान अधिकार है। और जो इस पृथ्वी पर भार है वह सभी जीवों की ही समस्या है। इस चरम सत्य के प्रति अवहेलना कालक्रम में समाज जीवन में, विशृङ्खला का स्वागत करती है समाज की समस्त सम्भावना उन्नति के पथ में चालित न हो कर, शेष पर्यन्त ध्वंस को आह्वान करती है ।

समाज में स्कूल कॉलेज क्यों खोला जाता है ? बच्चे बच्चियाँ जिस से पढ़ाई-लिखाई कर सकें, इसलिये नहीं क्या ? सभी माता-पिता चाहते हैं उनकी संतान-सन्तति ज्ञानबुद्धि से उन्नत हो। तब भी आजकल भी अनेक

माता-पिता अपने बालक बालिकाओं को भेज नहीं सकते हैं। ऐसा क्यों होगा ? जिस किसी भी कल्याण-मूलक प्रतिष्ठान के द्‌वारा सबोंको समान सुयोग-सुविधा देना उचित है। यह सबका जन्मगत अधिकार है। कोई कोई प्रकाश्य रूप में तथाकथित संस्कृति का नकाब पहन कर भी गुप्तरूप में व्यष्टिस्वार्थ और दलीय स्वार्थ को ही समर्थन करते हैं। मानव समाज में इस तरह की कपटता का कोई स्थान नहीं है। आज की पृथ्वी की इस शिक्षा का, यह एक वेदना-दायक फलश्रुति है। यह बात खाद्‌य, वस्त्र, गृह, चिकित्सा के क्षेत्र में भो समभाव से प्रयोज्य है। सामवायिक प्रचेश के द्‌वारा सभी समस्याओं के समाधान में ही है यथार्थ समाज प्रतिष्ठा का तात्पर्य ।

ऐसी कुछ प्रवणता और प्रवृत्ति होती है जो मनुष्य और पशु दोनों में प्रकाश पाता है। प्रकृतपक्ष में ये

प्रवणताए मनुष्य में पशुत्व के अस्तित्व का साक्ष्य वहन करता है।

इन प्रवणताओं को वाक्जाल विस्तारकर हो सकता है चापकर रखा जा सकता है किन्तु दीर्घ दिनों तक ऐसा करना केवल आवाञ्छनीय ही नहीं है, असम्भव भी है। कारण है, ये सब अस्तित्व के प्रधान संरचनाओं का ही समर्थन करते हैं। मनुष्य और जीवजन्तु दोनों की प्रवणता के दिन से कुछ मेल खाता है, इसीलिये इन्हें प्राणी पर्यायियुक्त करते हैं। पार्थक्य के बीच, मनुष्य के भीतर जो पशु छिपकर रहता है, उन प्रवृत्तियों को माजित रूप से सूक्ष्मतर भाव में प्रकाश करने में सक्षम है। यह जो मार्जित रूप, इसीको कहते हैं 'सभ्यता'। खाद्य ग्रहण करना सबों के लिये अत्यावश्यक है। किन्तु मनुष्य जब बहुत क्षुधात्त रहता है, तव भी चारों तरफ के

परिवेश की उपेक्षा कर क्षुबात्ततं कुत्ते की तरह, वह खाने के टेबुल पर छूटे हुये को जाकर खाना शुरू नहीं करता है। यदि विचार बुद्धि की अपेक्षा उसकी क्षुधा की व्याकुलता अधिकतर न हो तो खाने के आगे हाथ-मुँह ठीक से धोकर खाने के लिये बैठेगा। यही है संस्कृति का अंग।

सभ्यता भी अपरिवर्तनीय है। इस पृथ्वी पर कुछ भी स्थिर नहीं है। सब कुछ गतिशील है। सभ्यता भी उसी तरह प्रगतिशील भावधारा अच्छे से और अच्छे की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर अर्थात् चरम लक्ष्य की ओर बढ़ चलता है-और वही लक्ष्य हैं परम ब्रह्म । जिनमें ये विचार सूक्ष्म शिष्टाचार जितना अधिक रहता है वे उतना ही संस्कृतिवान हैं। हमलोगों को यह समझने की जरूरत है कि सूक्ष्म अभिव्यक्ति और कपटता एक नहीं

है। कपटाचारी के बाहरी आचरण और भीतर के उद्देश्य में, स्वर्ग मर्त्य का पार्थक्य रहता है। किन्तु शिष्ट व्यक्ति के भीतर और बाहर में कोई फर्क नहीं होता। जहाँ माजित रूप में अभिव्यक्ति प्रकट हुई है, वहाँ मनुष्य की विचार बुद्धि और औचित्यबोध काम करता है।

आपेक्षिक दृष्टि से देखने पर एक मनुष्य जितना अधिक संस्कृति सम्पन्न है, वह व्यष्टिगत जीवन में उतना ही असहाय है। एक नवजात शिशु सम्पूर्ण रूप से - अत्तहाय होता है। आत के घर में सद्यः जन्म लेकर जो इस समाज में आया है, उस असहाय शिशु की अवस्था का विचार करें तो। समाजिक परिवेश में एक सभ्य मनुष्य और अधिक परिचालित मन से अपने शिशु के प्रति अधिक कर्तव्य परायणता का परिचय देते हैं,

ठीक इसी कारण से, उनके बच्चे, अपनी शक्ति से कोई काम करने में असमर्थ हो जाता है। प्रकृति के नियम के अनुसार माँ का स्नेह और बुद्धि जितनी अधिक होगी, उतना ही शिशु अपनी माँ पर अधिक निर्भरशील होगा। पशुओं के जीवन में माँ का स्नेह जितना कम होता है, उतने ही उनकी संतान स्वयं निर्भर और समर्थ होने में कम समय लेते हैं। प्रकृति उन्हीं सब अवहेलित बच्चों की रक्षा का दायित्व लेकर उनमें बचने की प्रवृत्ति जगा देती है। । एक बन्दर का बच्चा अत्यन्त शीघ्र अपनी माँ के शरीर को पकड़ना सीख लेता है; यक्सों कि बानर माँ को वन जङ्गल में इधर-उधर उछ्लन-कूद करने में, कई अङ्ग-प्रत्यङ्ग कोको, कार्य में लगाना पड़ता है। इसलिये वानर-माँ अपनी संतान को गले में लगाकर 'चल नहीं सकती है; क्योंकि गला टेंढ़ा करने से शिशु की मृत्यु हो सकती है। एक बिल्ली का बच्चा अन्धा जन्मता है।

इसलिये वह अपनी माँ को देख नहीं पाता है। शरीर से चिपकना तो दूर की बात है इसलिये बिल्ली को, अपने बच्चे को मुख से पकड़ कर ढोना ही होगा। गैड़े का बच्चा जन्म लेने के साथ ही अपनी माँ के पास से दौड़कर भाग जाता है। वह ठीक ही करता है; क्योंकि उसकी माँ का जीभ इतना रुखड़ा होता है कि, यदि वह प्यार से अपनी संतान का शरीर कई बार चाट दे तो बच्चे की मृत्यु हो जायेगी ।

इसलिये माँ के पास से दूर हो कर गैंड़ा का बच्चा कुछ समय अपेक्षा करता है कि उसके देह का चमड़ा कुछ सख्त हो जाय, उसके बाद वह माँ के पास फिर आ जाता है।

समाज को देखना होगा कि मानब शिशु का यथोपयुक्त यत्न किया जाय; क्योंकि बच्चे अपने अस्तित्व के लिये पिता-माता के स्नेह और यत्न पर सम्पूर्णरूप से निर्भर-शील रहते हैं। ये सभी असहाय बच्चे सिर्फ आखों के अश्रुओं द्वारा अपनी सुविधा-असुविधाओं को जना देते हैं। बच्चों को बालकपन से जबानी में पहुंचा देना एक विराट दायित्वपूर्ण कार्य है। मैं इसके पूर्व ही कह चुका हू, कि समाज के सदस्यों को एक साथ आगे चलना होगा। एक नवजात शिशु भी इस चलने के पथ का यात्री है। शिशु को हमलोगों को साथी की तरह मानना, यह हमलोगों के समाज-संहिता में जातकर्म कहकर चिह्नित किया गया है।

बुद्धिगत विचार से जीवकुल को दो भाग में विभक्त किया जाय, एक वह जो दूसरों में अपने ज्ञान का

वितरण करना चाहते हैं, और जो ऐसा नहीं चाहते हैं। जो ज्ञान विनिमय करने के पक्ष में हैं, समझना होगा वही अधिकतर सामाजिक चेतना सम्पन्न है। और जो उसका विरोध करते हैं, पारस्परिक सहमति के अभाव में कभी भी यौथ समाज-मानसिकता का गठन नहीं कर सकते। मनुध्य है, मुख्यतः सामाजिक प्रवणता सम्पन्न जीव । इसलिये मनुष्य को सब समय याद रखना होगा, कि जिसको शक्ति-सामर्थ्य कम है, जिनको प्रकृति ने जीवन-संग्राम की तीव्रता सहन करने के लायक शक्ति नहीं ही है, उनको साथ लेकर आगे चलना होगा। जो निराश्रय को, जो असहाय की, सहायता करते हैं, समझना होगा, वे अधिकतर सभ्य समाज-चेतना सम्पन्न हैं। जो वञ्चित अवहेलित और उपेक्षित जन-गोष्ठी की सहायता के लिये अ.गे बढ़कर आते हैं, वे ही हैं सामाजिक-मानसिकता सम्पन्न जीव। इसलिये प्रत्येक

नर-नारी के लिये आनन्दमार्ग का द्वार खुला है। जो कोई चाहें आनन्दमागी में योगदान कर सकते हैं और दूसरों के कन्धे से कन्धे मिलाकर यात्रापथ का गान गी सकते हैं। एक साथ होकर आगे चलने का अर्थ ही है विजय-पथ की यात्रा। आनन्दमार्ग यह बात द्वयर्थहीन भाषा में बताना चाहता है।

भावजड़ता से सावधान

संरचनागत अखण्डता के विषय में कहा जा सकता है सर्वोत्कृष्ट बाकृति होती है डिम्बाकृति । लातिन में

सूचीपत्र

'ओवाम' शब्द का अर्थ होता है- अण्डा। इसलिये "ओवाल' शब्द का अर्थ है- अण्डा के ऐसा अर्थात् सम्पूर्ण रूप से नहीं होने पर भी कुछ अण्ड के ऐसा । सम्पूर्ण डिम्बाकृति नहीं, तब प्रायः डिम्बाकृति । सभी ज्योतिष्क इसी आकृति के हैं। संस्कृति में, इसलिये विश्व को कहा जाता है ब्रह्माण्ड । अण्ड माने अण्डा । संस्कृत अण्ड से उर्दू में "अण्डा' शब्द आया है। हमलोगों का विश्व वहुत बड़ा है किन्तु अनन्त नहीं है और उसकी आकृति भी देखने -से डिम्बाकार है, अर्थात् इसकी एक सीमारेखा है।

हाँ, यह विश्व ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है और वास्तव में इतना बड़ा है कि हम उसका परिमाष नहीं कर सकते हैं। किन्तु तत्वगत भाव से परिमाप किया जा सकता है। अभी मैंने कहा कि सबसे सुविधाजनक संरचना होती है, यही है डिम्बाकृति । एक अणु का उदाहरण लिया जाय।

एक आणविक संरचना क्या है ?--उसमें एक केन्द्र विन्दु रहता है, जो संरचना के मध्य में सबसे अधिक भारी वस्तु है और उसके चारों तरफ विद्युत अणुसमूह घूम रहा है। ठीक वैसे ही है हमलोगों की पृथ्वी की संरचना । पृथ्वी उसका केन्द्रविन्दु है और चन्द्रमा उस केन्द्रविन्दु के चारों तरफ घूम रही है। सबसे बड़ी है- सौर-संरचना। सूर्य है केन्द्रविन्दु और बहुत ग्रह उसको केन्द्र बनाकर घूम रहे हैं। सब से बड़ी संरचना है विश्व-ब्रह्माण्ड - परमपुरुष, पुरुषोत्तम जिसके मध्यमणि हैं। उस पुरुषोत्तम के चारों तरफ सभी जैव-अजैव सत्तासमूह घूम रहे हैं।

विज्ञान के छायसब जानते हैं; दो कारणों से गति बची रहती है- केन्द्रनुगा और केन्द्रातीगा। केन्द्रानुगा शक्ति व्यासार्थ के दूरत्व को कम कर देने की चेष्टा

करती है और केन्द्रातीगा शक्ति उस दूरत्व को केन्द्रविन्दु से हटाने की चेष्टा करती है। संस्कृत में इस केन्द्रानुगा शक्ति को 'विद्या' और केन्द्रातीगा शक्ति को अविज्ञा कहते हैं। साधारण भाषा में हमलोग अविद्या के लिये अंग्रेजी में "शैतान" शब्द का व्यवहार करते हैं। अभी जाने या न जाने, ज्ञान भाव से हो या अज्ञान भाव से हो, विश्व की प्रत्येक भौतिक तथा मानसिक सत्ता उसी परमपुरुष के चारों तरफ घूम रही है।

सीमित वस्तु तथा सीमित संरचना के क्षेत्र में क्या होता है ? - जब कोई घूर्णायमान सत्ता केन्द्रविन्दु से अनेक दूर हट जाती है, तब वह एक अन्य केन्द्रविन्दु द्वारा आर्कीषत होती है। इसके फलस्वरूप विभिन्न केन्द्रविन्दुओं में पारस्परिक संघर्ष शुरू हो जाती है। किन्तु इस विश्व ब्रह्माण्ड के क्षेत्र में मात्र एक ही

केन्द्रविन्दु है। अर्थात् इस क्षेत्र में केन्द्रविन्दु की सीमा के बाहर चले जाने का कोई प्रश्न हो नहीं उठता है। जैसे जब कोई मनुष्य अधिक परिमाण में अविद्या के वशीभूत हो जाता है, तब केन्द्रविन्दु से उसके व्यासार्ध का दूरत्व बढ़ जाता है। किन्तु व्यासाधं तो रह हो जाता है।

मनुष्य, पशु-पक्षी, उद्भिद् तथा अजैव सत्ता को भी गतिशील रहना ही होगा। और इसी कारण से मैंने कहा था चलमानता ही जीबन है, रुक जाना ही मृत्यु है।

जब मनुष्य जड़ता के द्वारा परिचालित होता है, ठीक तरह से परिचालित न होकर, नियन्त्रित होता है, तब उसकी आन्तरिक चलमानता नष्ट हो जाती है। सुतरां, वह तब प्राणहीन हो जाता है। तब उसकी अवस्था मृत

की अपेक्षा से भी खराव हो जाती है इसलिये तुम सागं के बच्चे बच्चियो समझलो, तुमलोग कभी भी किसी भाक जड़ता से परिचालित होकर विश्व के चक्रविन्दु से दूर मत हट जाना ।

उस मध्यमणि से तुमलोगों के व्यासाधं की दूरी बढ़ने मत देना। सभी समय तुमलोग अपने व्यासार्ध की दूरी को कम करने की चेष्टा करो। जिससे तुमलोग चक्रनाभि के अधिक से अधिक नजदीक पहुंच जा सको। तुमलोग हो तो प्रश्न कर सकते हो- “भावजड़ता क्या चीज़ है ?” तुमलोग सब पढे लिखे बच्चे बच्चियाँ हो । तुमलोग को समझना होगा कि कि भावजड़ता एक विशेष प्रकार की मानसिक स रचना है। अवश्य ही धारणामात्र ही एक एक मानसिक संरचना है, किन्तु इनकी सीमारेखा के विषय में अवश्य ही तारतम्य रह जाता है- मैं समझता

हूँ, तुमलोगों में से कोई कोई 'प्राउट' के विषय में सुने हो। मैं समझता हूँ, तुमलोग उस विषय में पढ़े भी हो। वहाँ प्राउट के पञ्चमतत्व में कहाँ गया है कि देश-काल-पात्र के परिवत्तन के साथ साथ सम्पत्ति की उपयोगिता ग्रहण की पद्धति भी परिर्वात्तत हो जाती है। क्या मैं यह बोला नहीं हूँ? हाँ, मैंने यही कहा है- और इसके फलस्वरूफ परिवत्तन का सुयोग भी वहाँ है। मनुष्य का मन कभी भी किसी भी चीज को बाँधकर रखना नहीं चाहता। वह गति चाहता है। और सिर्फ गति ही नहीं, बह गति में द्रुति लाना चाहता है। किन्तु भावजड़ता क्या है ? भावजड़ता होती है एक ऐसा भाव, जिसके चारों तरफ एक घेरा डाल दिया गया, कहा गया है, इसके बाहर नहीं जाना होगा। अर्थात् भावजड़ता मनुष्य को कृत्रिम घेरे के बाहर जाने नहीं देती । सुतरां, भावजड़ता

एकान्त भाव से मानव मन के मौलिक गतिप्रवाह का शत्रु है।

जानकर अथवा अन जाने प्रत्येक सत्ता को परम केन्द्रविन्दु के चारों तरफ घूमना हो होगा। इसका कोई विकल्प नहीं है। किन्तु भावजड़ता के क्षेत्र में क्या होता है? जब कोई केन्द्रविन्दु के निकट आ जाता है, तब वह भूमा मनके द्वारा ऐसे प्रभावित हो जाता है कि वह उस ओर छूटकर दौड़ पड़ता है, केवल उनके साथ मिल कर एकात्म लाभ करने के लिये। वस्तुतः जब यह हो जाता है, तब अणुमन भूमामन के साथ मिलकर एक हो जाता है, और भूमामन सब समय भावजड़ता के ऊध्वं ही रहते हैं। इसलिये शुरू से ही भावजड़ता के प्रभाव से मुक्त होने के लिये तुम लोगों को संग्राम-मुखर होना होगा। इस भावजड़ता के कारण ही मानव समाज की यथार्थ

प्रगति नहीं हुई है। गत पाँच हजार वर्ष में मानव-मनीषा का यथेष्ट विकाश हुआ है, गत दो सौ वर्षों में उन्नति और भी द्रुत गति से हुई है। द्‌वितीय विश्वयुद्‌ध के वाद से अर्थात गत कई दशकों से उन्नति उससे भी अधिक हुई है।

अभी बात यह है कि बौद्‌धिक क्षेत्र में अग्रगति होने परभी सभ्यता का सङ्कट रह गया है। इस सङ्कट का उत्सस्थल क्या है ? सङ्कट ही क्या है? यह ठीक है कि मनुष्य खूब चतुर-चालाक जीव है। फिर भी विपत्ति सृष्ट हुई इस भाव जड़ता से ही। मानस स्तर में, इस भावजड़ता नेही, मनुष्य के मनोजगत में, विपद का स्वागत किया है। भौतिक क्षेत्र में मनुष्य का अस्तित्व विपत्तिभुक्त हो भी सकता है। नहीं भी हो सकता है, किन्तु मानसिक क्षेत्र में विपत्ति अवश्य रह गई है।

जागतिक क्षेत्र में विपत्ति अवश्य रह गई है। जागतिक क्षेत्र में खाद्य-पानीय-वासस्थान की निश्चितता हो सकता है तुमलोग पा सकते हो। किन्तु, बही सब कुछ नहीं है। मनोजागतिक क्षेत्र में, बौद्धिक स्तर में विपत्तिमुक्त होना चाहते हो, चाहते हो मानसिक उन्नति, निरङ्कुश बौद्धिक प्रगति । किन्तु कितनी प्रकार की भावजड़ताने तुमलोगों को ग्रास किया है। उदाहरणस्वरूप, मार्क्सवाद की बात कह सकते हैं। मार्क्सवाद इसीप्रकार की एक भावजड़ता है। इसलिये मार्क्रसवाद अपनी सीमारेखा के बाहर तुमको कुछ भी विचार करने नहीं देगा। सुतरां, समस्त बुद्धि-जीवियो का कत्तव्य है, कि जन-गण को उनके वत्तमान एवं भविष्य के विषय में सतर्क कर देना और भावजड़ता की सर्वग्रासी क्षुधा से सावधान कर देना ।

तुमलोगों का पथ परमा प्रशान्ति का पथ है। इसलिये तुमलोगों को अवश्य ही विश्व का चक्रनाभि की और अग्रसर होना होगा। इस विश्व ब्रह्माण्ड में कितनै सौ जीव रहते हैं- कितने मनुष्य, जीवजन्तु, उद्भिद, लता-पत्र प्रभृति और उनके प्रत्येक को एक एक मन है। मैंने तुमलोगों को इसके पहले ही कहा था कि अनुन्नत जीव का मन है एक सहजात वृत्तिमात्र। किन्तु मनुष्य के क्षेत्र में मन है क्रमः विकाशशील सत्ता। समस्त सत्ताए जाने अनजाने अजस्र भाव-भावना, अनुभूति, वृत्ति, वासना, कामना लेकर आगे चल रही हैं। साधक, शिल्पी, वैज्ञानिक, दार्शनिक, इन सवों के मन में उसी परम सत्य में प्रतिष्ठित होने की एक आकांक्षा छिपी रहती है। अणुमानसको भूमामानस के केन्द्र समूहों से मिला देना होगा। भूमामानस के केन्द्रसमूह की ओर अग्रसर होने के पथ में किसी बाधा को मानकर चलना उचित नहीं है

किसी प्रतिकूलता को प्रोत्साहित करना उचित नहीं है। इस भाव से ही मानवता की अवारित अग्रगति हो, जो किसी जाति, वर्ण, पोषाक परिच्छद, ऐतिहासिक या प्रथागत बाधा को स्वीकार नहीं करे। मानवजाति का एक अभिन्न उत्तराधिकार है। और सब समष्टिगत भाव से उसी उत्तराधिकार को पाथेय बनाकर विश्व-मानवता की पताका हाथ में लेकर सामने की ओर आगे बढ़े ।

इस विश्व में सभी सुखी हो, सब सभी प्रकार के रोग से मुक्त हो, सब सभी के भले दिशा को देखें। अवस्था के चाप से किसी को, कोई कष्ट भोग करना न पड़े ।

(१५ सेप्टेम्बर, १९७९, इस्टाम्बल)

नदी और सभ्यता

मनुष्य जीवन है- पशु जीवन की उन्नति का चरम-स्तर । मानव-जीवन का वैशिष्ट्य है-उसका धर्म है, किन्तु पशु-जीवन का कोई धर्म नहीं है।

रीति-नीति, आचार-आचरण, सौजन्य, आदर्श, प्रेम-प्रीति इत्यादि के समाहार को ही कहते हैं सभ्यता । समस्त मनुष्यजाति की संस्कृति एक ही है किन्तु सभ्यता, समाज के भेद से पृथक पृथक होती है।

मानव सभ्यता का उन्मेष तथा प्रसार नदी-उपत्यका को घर कर ही घटता है। नदी के समान ही मनुष्य की सभ्यता का भी तीन स्तर हैं। वे हैं पार्वत्य स्तर (Hill

phase), समतलभूमि स्तर (Plain phase) और व-द्विपीय स्तर (मुहाना) delta phase I पार्वत्य स्तर से सभ्यता आगे चलकर समतलभूमि के स्तर की ओर और अन्त में मुहाना स्तर तक उपनीत होती है। सभ्यता का सूत्रपात होता है पावंत्य स्तर में, समतलभूमि के स्तरमें, उसका विकाश होता है, और व-द्विपीय स्तर में (मुहाना स्तर) उसकी चरम परिणति होती है।

अभी प्रश्न उठता है - सभ्यता की उत्पत्ति नदी-उपत्यका में ही क्यों होती है ? आँखे नदी उपत्यका की ओर जाँय ही क्यों? प्राचीनकाल में प्रस्तर युग तक मनुष्य कुआँ खोद नहीं सकता था। और इसलिये वे जुल-आपूत्ति के लिये प्राकृतिक उत्स के ऊपर निर्भर करते इसलिये निर्धारिणी, झरना, जलप्रपात, नदी इत्यादि के पास ही जन-वस्ती बस जाती थी। यही नहीं,

जीवजन्तु भी वासस्थान के लिये इसी प्रकार के स्थान को चुनते थे। केवल पक्षियों के क्षेत्र में इस नियम का व्यतिक्रम दौख पड़ता है। इस तरह उपत्यका, झरना, निर्धारिणी, जल-प्रपात विशेषकर नदी तोरवर्ती स्थान ही में ही मनुष्य ने वासस्थान बनाया नदी-उपत्यका में ही मनुष्य ने अपनी वस्तीबसायी, इस कारण सभ्यता का प्रथम सूत्रपात भी वहीं हुआ। समाज में, मनुष्य का पारस्परिक सम्पर्क होता है, नारी-पुरुष का सम्पर्क होता है। मनुष्य के सामूहिक प्रयोजन, वैयैष्टिक और सामूहिक दाय-दायित्व, व्यष्टिगत और समष्टिगत अग्रगति की धारा यह सब लेकर ही सभ्यता कहलाती है। आगे ही कहा गया है-कि सभ्यता का सूत्रपात हुआ था पार्वत्य स्तर में, और उसकी परिणति व द्विपीय स्तर में होती है। स्वभावतः व-द्विपीय स्तर में, होता है सभ्यता के चरम और सर्वोच्च स्तर ।

भारतवर्ष की गङ्गानदी-उपत्यका सभ्यता का पार्वत्य स्तर शुरू हुआ था- उत्तर-प्रदेश के गढ़वाल और कुमायु पर्वतमाला में। उत्तरप्रदेश का अवशिष्टांश और विहार के बाद समतलभूमि स्तर में, और उसका व-द्वीपीय स्तर शुरू होता है पश्चिमबंग के मालदह से। ब्रह्मपुत्र उपत्यका सभ्यता का पार्वत्य स्तर शुरू होता है तिव्वत और अरुणाचल में। इसकी समतलभूमि स्तर है असमभूमि (आसाम) और इसका व-द्विपीय स्तर है गोयालपाड़ा, मैमनसिंह और रंगपुर जिलाओं में (शेषोक्त दो जिला वत्त मान बंगलादेश अन्तर्भुक्त है व-द्वीप (Delta) कहने से समझा जाता है. नदी जहाँ संक्षिप्ततम गतिपथ धरकर समुद्र में जाकर मिलती है। इस स्तर में उपनदियों की कोई मुख्य भूमिका नहीं रहती है। अवश्य पार्वत्य स्तर में ये उपनदियाँ एक प्रधान भूमिका ग्रहण

करती हैं। वहाँ शाखा नदी नहीं बोलने से भी काम चलेगा । द्‌वितीय स्तर में अर्थात्‌ समतल भूमि स्तर में सभ्यता का विकाश तथा प्रसार के विषय में इनकी बड़ी भारी भूमिका रहती है। तब उसके साथ शाखा नदियों का कुछ गुरूत्व रहता है। जो भी हो, व-द्‌वीप स्तर में उपनदियों को अपेक्षा शाखा नदियों की अधिकतर गुरूत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

मूल वैशिष्ट्‌य की ओर लक्ष्य रखकर सभ्यता को मूख्यतः दो भाग में विभक्त किया जाय - मौलिक सभ्यता और विमिश्र सभ्यता। नदी जैसे जैसे आगे की ओर बढ़ती जाती है और अन्य नदियों से जाकर मिलती है, विशेष विशेष सभ्यता का भी वैसे वैसे परिवत्तन होता जाता है। और इसी तरह से जन्म लेती है खण्ड सभ्यता (Sub-civilisation)

मन्दाकिनी और अलकनन्दा नदी की सभ्यता की उत्पत्ति हुई थी पार्वत्य स्तर में ही, इन दो सभ्यताओं का एक समन्वय हुआ था। अनेक पहाड़-पर्वत-झरना, निर्माणी के बीच से अतिक्रम करने के बाद मन्दाकिनी और अलकनन्दा नदियाँ दोनों पार्वत्य स्तर में परस्पर निकट आती है। हरिद्वार के निकट दोनों नदियाँ मिलकर दो मौलिक सभ्यताए गढ़वाली और कुमायनी-मिलित भाव से एक विमिश्रित गाङ्गय सभ्यता का सूत्रपात करती है, जिसका अधिक्षेत्र प्रयाग पर्यन्त विस्तृत है।

फिर, एक और नदी उपत्यका सभ्यता यमुना सभ्यता (यमुना नदी के तीरपर गढ़ उठा था, उसे हमलोग यमुना-सभ्यता नाम दे सकते हैं), कई खण्ड सभ्यताओं

का समवाय गढ़ उठा था, जहाँ बहुतर रूप में रीति-नीति, पोषाक-परिच्छद, आचार-व्यवहार प्रर्वात्तत होते है। यह सभ्यता भी प्रयाग तक विस्तृत था। विमिश्र गाङ्गय सभ्यता और विमिश्र यमुना सभ्यता प्रयाग के सन्निकट परस्पर मिलकर एक विमिश्रित गङ्गा-यमुना सभ्यता का सूत्रपात करती है।

जो प्रयाग संगम के बाद से वाराणसी तक विस्तृत है। प्रयाग में गंगा और यमुना सभ्यता का आचार-आचरण, रीति-नीति का द्वितीय समिश्रण घटता है।

प्रयाग के बाद से हमलोग और एक सभ्यता का विमिश्रण देखते हैं। इसलिये रीति-नीति, आचार-आचरण, व्यवहार, सामाजिक विधि-निषेष, भाषा, उच्चारण रीति, मनुष्य के देह संस्थान् में भी पूर्व उत्तरप्रदेश और

पश्चिम उत्तरप्रदेश में सुस्पष्ट पार्थक्य दीख पड़ता है। परवर्ती विमिश्रण होता है- जब गोमती, राप्ती, सोन और सरयू नदी हिमालय के उत्तरांश से नयीधारा लेकर आगे आयी और चम्बल-घाघरा विन्ध्य पर्वत की धारा को लेकर आयी। इस तरह सभ्यता का पार्थक्य सूचित होता है विभिन्न नदियों के गतिपथ के विभिन्न स्तर में, और अन्य नदी-सभ्यता के साथ -विमिश्रण के फलस्वरुप, उप-सभ्यता और शाखा-सभ्यता का आत्मप्रकाश करता है।

यमुना और चम्बल-सभ्यता का समन्वय बुन्देल-उपसभ्यता की सृष्टि करता है और यमुना और सोन-सभ्यता का विमिश्रण से वाघेली सभ्यता का उद्भव होता है।

काशी के बाद अन्य कई नदीयों के मिलने के फलस्वरुप सभ्यता का और एक विमिश्रण घटता है। इस तरह समभूमि स्तर में शाखा नदी और उपनदियाँ नयी नयी सभ्यता के उद्भव की दिशा में गुरुत्वपूर्ण भूमिका पालन करती है।

पश्चिमबंग में मालदह के बाद गंगा वन्द्वीप (delta) स्तर में प्रवेश करती है और विमिश्रित गांगेय सभ्यता भी व-द्वीप स्तर में उपनीत होती है, जिस स्तर में शाखा नदियों की भूमिका है। विमिश्र गांगेय सभ्यता की परिणति वंगाल में आकर घटित होती है।

मालदह के पास आकर गंगा दक्षिणामुखी होकर प्रवाहित होती है। ('दह' शब्द का अर्थ है नदी की जलधारा की चक्राकार घूर्णायमान अवस्था। इससे

सन्निहित जनपद का नामकरण हुआ मालदह)। गांगेय विमिश्र सभ्यता बंगाल में आकर उत्कर्ष लाभ करती है।

इसलिये स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है- कि उत्तरप्रदेश का पार्वत्य अञ्चल है सभ्यता का प्रथम स्तर और उत्तरप्रदेश का अवशिष्टांश और विहार है द्‌वितीय स्तर -जहाँ बघेली, बुन्देली, अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली और अङ्‌गिका उप-सभ्यता-समूह का उद्‌भव हुआ था ।

ब्रह्मपुत्र सभ्यता है प्राक्समचैनिक (Proto-chinese) सभ्यता तथा इन्दो-तिब्बतीय सभ्यता का विमिश्रित रूप। असम सभ्यता है- तिव्वत-चीन सभ्यता और गाङ्‌गय सभ्यता की विमिश्र धारा। असम की भूमि जिस कारण से गाङ्‌गय सभ्यता के अति निकटवर्ती है।

इसलिये ऐसा संभव हुआ था। इसके बाद ब्रह्मपुत्र बाँयें तरफ मुड़कर बंगाल में प्रवेश करती है और यही अवस्था है उसका व-द्वीप स्तर । व-द्वीप अवस्था ही है ब्रह्मपुत्र सभ्यता की चुड़ान्त अवस्था । वंगाली है ब्रह्मपुत्र सभ्यता का सर्वशेष परिणाम ।

वंगाल में है और एक सभ्यता की धारा और वह है - राढ़ सभ्धता । इस सभ्यता का पार्वत्य स्तर, समतलभूमि स्तर और व-द्वीपीय स्तर ये तीन स्तर हैं वंगाल में। राढ़ की सब, कई नदियाँ वंगाल के निम्नाञ्चल में आकर मिलती है और नयी नयी विमिश्र उपसभ्यताओं को जन्मदिया है।

इसलिये देखते हैं वंगाल में तीन व द्वीपीय सभ्यता का विमिश्रण हुआ है-गाङ्गय सभ्यता, ब्रह्मपुत्र सभ्यता

और राढ़-सभ्यता। जगत में सभ्यता के, इतिहास में, यही सर्वोत्तम विमिश्र सभ्यता का उत्कृष्ट उदाहरण है। बंगाल के मनुष्य के बौद्धिक विकास के विषय में प्रकृति की सहायता अवारित है। कारण है पृथ्वी पर और कही भी गङ्गा और ब्रह्मपुत्र ऐसी । इतनी बड़ी बड़ी नदियाँ एकत्र नहीं मिलती हैं।

मौलिक सभ्यता में मनुष्य का शारीरिक सामर्थ्य अधिक होता है। विमिश्र सभ्यता में, मनुष्य का बौद्धिक सामर्थ्य और उसके साथ पूर्ण सभ्यता ही हो जाती है जटिल और दृढ़भिक्तिक और गाङ्गय सभ्यता के अधिवासियों के बीच सरलता और दैहिक सामथ्यं अधिक रहती है। किन्तु व-द्वीपीय स्तर में मनुष्य जटिल होते है, दैहिक सामर्थ्य अपेक्षाकृत कम होता है,

किन्तु बौद्धिक, सामर्थ्य बहुत अधिक होता है। बंगाल का मनुष्य बौद्धिक दिशा में खूब उन्नत हैं, कारण है-

(१) बंगाल की सभ्यता है तीन व-द्वीपीय सभ्यता का विमिश्रण ।

(२) बंगाल की सभ्यता मौलिक सभ्यता नहीं है- यह एक महान जटिल सभ्यता है। यह तीन तीन व-द्वीपीय सभ्यता का चूड़ान्त विमिश्र रूप है। इसलिये स्वभावतः बंगाल की सभ्यता खूब शक्तिशाली सभ्यता है- बौद्धिक और अन्यान्य क्षेत्र में जो बहुत प्राग्रसर है।

इलाहाबाद, २ सेप्टेम्बर, १९८२ ।

नदी और सभ्यता की बात बोलने पर एक पुरानी घटना आँख के सामने दीख पड़ती है। घटना आज भी प्राणीन् गतिधारा में स्पन्दित है।

मै इलाहाबाद गया था- वहाँ के विश्वविद्यालय में आमन्त्रित होकर भारतीय दर्शन के सम्बन्ध में वक्तृता देने के लिये। मैं साधारणतः इस प्रकार का आमन्त्रण ग्रहण नहीं करता हूँ। तब इलाहावाद की बात हमारे पास बन्य प्रकार की थी। प्रथमतः विश्वविद्यालय में अनेक हमारे साथ व्यष्टिगत रूप में परिचित थे। द्वितीयतः इलाहाबाद विश्वविद्यालय का उस वस्त भी यथेष्ट ख्याति और प्रभाव था। हमारा कार्य सन्ध्या के आते आते समाप्त हो गया । इसलिये इलाहाबाद में और समय नष्ट न कर, मुजफ्फरपुर के अभिमुख रवाना हुआ। मुजफ्फरपुर में उस समय मुझे रामबाग स्टेशन के

कई कार्य करना था, इसलिये वहाँ जाना जरूरी हो गया। प्रतीक्षालय में हठात् मुलाकात हो गई सुतनुका के साथ। साथ में था उसका पुत्र हिमवान । मुझे देख कर सुतनुका आनन्द से चित्कार कर उठी। बोली, "भाई, यह अभावनीय है कि इस तरह आपके साथ मुलाकात हो जायेगी, यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकी थी।"

सुतनुका मित्र मेरी मौसेरी बहन है। उसके साथ इसके पहले प्रायः पन्द्रह वर्ष पूर्व भेंट हुई थी, उसकी छोटी बहन निहारिका के विवाह के समय, चन्दन नगर में। उसके स्वामी अरूपरतन मित्रने एक दक्ष सामरिक अफसर के रूप में अंग्रेज अमलदारी में यथेष्ट सुनाम अर्जन किया था। अरूपरतन के साथ हमारी प्रथम बातचीत चन्दननगर में ही बोड़ो कालीतला में हुई थी।

मैंने कहा, "मुलाकात जब हो गई, तो हमारे साथ चलो न मुजफ्फरपुर, उसके बाद वहाँ से वद्‌धमान चले जाना।" उसने कहा- भाईजी, हिमवान के शीतकालीन छुट्‌टी में मैं आपके यहाँ जाऊंगी। अभी उसका कालेज खुल गया है। और इसके अलावे अरूपरतन परसों लण्डन से दमदम हवाई अड डे पर पहुंच रहा है। पहुंचते ही साथ साथ चला जायेगा वर्द्‌धमान घरपर। घर में ताला लगा है। मैं यदि वद्‌धमान पहुंचने में देर करू, तो वेचारा बहुत असुबिधा में पड़ जायेगा

मैंने विचार कर देखा बात तो ठीक ही है। इसलिये निश्चित हुआ, हमलोग रामबाग (इलाहाबाद सिटी) से मिटरगेज गाड़ी से एक ही कमरे में बातें करते करते बनारस सिटी पर्यन्त जायेंगे। मैं बनारस सिटी से मिटर गेज गाड़ी से चला जाऊँगा मुजफ्फरपुर और सुतनुका -

हिमवान बनारस शहर में कुछ देर रह कर ऐसी एक किसी गाड़ी से वद्‌धमान चली जायेगी, जो रात के अन्त में या भोर होने के पहले ही वद्‌धमान पहुँच जायेगी। कारण था, यह अनुमान किया गया कि अरूपरतन उसी दिन प्रायः दस बजे कलकत्ता से लोकल ट्रेन से वर्धमान पहुचेगा ।

तव वही हुआ। बहुत दिनोंके बाद साक्षात्कार हुआ था। सुतनुका सव वर्तमान में वर्धमान का वासी होने पर भी असल में कोन्नगर के मित्तिर थे। पाठान अमलदारी के शेषकाल में भागीरथी के पश्चिम तीरपर हुगली जिलामें जो सारस्वत समाज गढ़ उठा था उसका अन्यतम केन्द्र था यही कोन्नगर। उस युग में यहाँ के राय-मित्तिर लोग ही जमींदार थे। उस काल में कोन्नगर

हुगली जिला या राढ़ का अन्यतम सभ्य और सुशिक्षित ग्राम के रूप में परिचित तो था ही, पूरे वंगाल में भी इस स्थान की प्रसिद्धि थी। इस स्थान का असल नाम है-कर्ण नगर । लोग कहते थे- वंगाल में नगर कहकर यही एक नगर है--- कर्ण नगर। शिक्षित लोग अपने अपने मुख से उसका नाम फेर-बदल कर देते है कोई किसी को पूछते-तुम कौन नगर जाओगे? - उसका उत्तर मिलता- नगर तो एक वही है, फिर कौन नगर क्यों पूछते हैं ? उसी से उस जगह का नाम हो गया कोन्नगर ।

सुतनुका को मैंने कहा, "हमलोग जिस शहर से आज आ रहे हैं, प्राचीनकाल में इस इलाहाबाद शहर का नाम था प्रयाग। यह बात ठीक ही है, कोन्नगर से प्रबाग अनेक पुराना है। यजुर्वेदीय युग के अन्त में इसकी

प्रतिष्ठापना हुई। तब प्राचीनता में वद्‌धमान प्रयाग की अपेक्षा पुराना है। पाठान युग में इस प्रयाग शहर का नाम हो गया अल्लाह-आबाद। तब से इस की ख्याति बढ़ी। शिया लोग शहर को बोलते थे- इल्लाहाबाद। मोगल युग में किन्तु शहर की ख्याति-वृद्‌धि रूक गई । फिर अंग्रेजों की अमलदारी के आरंभ में, शहर समृद्‌ध हो उठा। अंग्रेजों ने इसको तत्कालीन आगरा और अयोद्‌या का संयुक्त प्रदेश (United Provinces of Agra and Oudh) - संक्षेप में (U.P.) का राजधानी बनाया।

बर्द्‌धमान प्राक्‌-बौद्‌ध युग में राढ़ की राजधानी था। बौद्‌ध-जैन युग में भी राढ़ की राजधानी था । मोगल अमलदारी में (अकबर के समय) वंगाल-सूबा की राजधानी हुआ था । कोन्नगर का किन्तु इस प्रकार का कोई राजकीय महत्व नहीं था। वह वद्‌ध मान जिला (उस समय हुगली जिला नहीं बना था) का एक

अभिजात ग्राम था। मध्य युग के सुप्रसिद्ध बंगाली पण्डित ईशानचन्द्र घोष, सुप्रसिद्ध शास्त्रकार और नैयायिक रामचन्द्र घोष, खड़दह के सुप्रसिद्ध संस्कृत पण्डित और शास्त्रज्ञ पण्डित प्राणतोष विश्वास, प्रथम बंगाली डी. एम और सिविल सर्जन डा० कृष्णधन घोष (Dr. K. D. Ghose-श्री अरविन्द के पिता), सब थे, इस कोन्नगर के सुसंतान ।

मैं उसके बाद हिमवान की ओर देखकर बोला- तुम्हारे पिताजी कोन्नगर के सुसन्तान हैं, किन्तु तुम वद्‌ध मान के हो । 7

वह बोला, आपने तो पहले ही कहा था- कोन्नगर पहले वर्द्‌ध मान जिला में ही था।"

मैंने कहा- "वह बात तो शत् प्रतिशत् सत्य है।" हमलोग चले हैं पश्चिम से पूर्व की ओर - सुप्राचीन ब्रह्मावत्त तथा ब्रह्माष देश से प्राचीन काशी राज्य की ओर। गाङ्गय अववाहिका के इस भाग को, गङ्गा नदी-सभ्यता का मध्यमांश कह कर गिना जाता है। प्रयाग के चढ़ाव को माना जाता है अववाहिकेय सम्यता का ऊर्ध्वांश; प्रयाग से सोन-गंगा के संगम तक के स्थल को माना जाता है-गंगा अववाहिकेय सभ्यता का मध्यमांश और सोन-गंगा संगम से साहेबगंज पर्यन्त स्थान को माना जाता है गंगा अववाहिकेय सभ्यता का प्राक-गौड़ीय अंश । साहेवगञ्ज के बाद से अर्थात गंगा जहाँ से दक्षिणवाहिनी होती है, वहाँ से गंगा सागर पर्यन्त गंगा अववाहिकेय सभ्यता का चरमांश या गौड़ीय सभ्यता है। यह गौड़ीय सभ्यता, उसके स्वकीयत्व के पूर्णत्व को तब प्राप्त करती है, जब राढ़ की नदियाँ अपनी स्थानीय

संस्कृति के स्वकीयत्व को लेकर मिलती हैं और मिलती है उत्तर-पूर्व से आगत देव-नद, ब्रह्मपुत्र, मङ्गोलतान्त्रिक सभ्यता की धारा के बहाव में । गांगेय अववाहिका का जो भाग, प्राक्-गौड़ोय और गौड़ीय सभ्यता का आधार है, उस बंश को यथार्य विचार से आर्यावत्त सभ्यता बोलना ठीक नहीं है। वह है पूर्व भारतीय सभ्यता या विस्तीर्णायित गंगा-व-द्वीप सभ्यता ।

इसलिये इलाहाबाद से काशी या धर सकते हैं गण्डकी (यहाँ गण्डकी कहने से नारायणी गण्डक की बात कही जा रही है - मुजफ्फपुर और समस्तीपुर की बूढ़ी गण्डक की नहीं। बूढ़ी गण्डक अववाहिका प्राक्-गौड़ीय सभ्यतो का अंश) तक के स्थान को आर्यावत्त सभ्यता के प्रतिभू के रूप में लिया जाता है। वद्ध मान को गिन सकते हैं राढ़ीय सभ्यता की मध्यमणि के रूप में और कोन्नगर

को पाता हूँ, इस राढ़ीय सभ्यता की भित्ति से प्रतिष्ठित गौड़ीय सभ्यता की कपिलधारा के रूप में, जहाँ से उद्भूत होती है वत्तमान बंगाली सभ्यता । इसलिये समझे हिमवान, तुम्हारा वद्धमान और तुम्हारे पिताजी का कोन्नगर दोनों ही, एक ही स्वर्ण-चन्द्रमा का ज्योत्सनावगाहन है।

हिमवान बी. एस. सी का छात्र है। किन्तु उसके नदी अववाहिकेय सभ्यता का आग्रह देख कर मैं अवाक हो गया। इतना छोटा लड़का ! और इस प्रकार सभ्यता के उत्स के सम्बन्ध में, उसके जानने का अर्पारसीम उत्साह ! हिमवान ने मुझे कहा, "अच्छा मामाबाबू, गंगा नीचे आती है गङ्गोत्तरी से, साथ में लेते औती है विशेष प्रकार के गाछ-पत्ते, जीवजन्तु और मनुष्य का परिवेश । यमुना भी तो यमुनोत्तरी से आती है वैसा ही एक

निजस्व परिवेश लेकर । तत्र प्रयाग की, गंगा-यमुना के मिल जाने पर कैसो अवस्था होगी ?

मैंने कहा, "बहुत सुन्दरप्रश्न किये हो। गंगा जिस तरह अपनी गेरुआ मिट्टी के साथ लेते आयो है विशेष प्रकार का 'फ्लोरा' (उद्भिद) और 'फौना' (जीवजन्तु) । उसका स्वाभाविक रूप से पंकिल मिट्टी मिश्रित जल के साथ चलना धर्म है। यमुना भी ठीक उसी तरह यमुनोत्तरी से अपने स्वकीयत्व को लेकर नीचे आती है। कुछ दूर आगे आने पर यमुना में आकर मिलती है, पश्चिम भारत, मालव, और बुन्दलेखण्ड के नाना प्रकार के वैशिष्ट्य लिये हुये चर्मण्वती या चम्बल नदी ।

चम्बल की धारा यमुना में मिलने के बाद, तैयार हुयी है और एक विमिश्र स्थानिक सभ्यता, जिसे

बघेलखण्डीय सभ्यता या बघेली सभ्यता नाम से अभिहित किया जा सकता है। यमुना इस विमिश्र धारा को साथ लेकर अपने काले जल को लाती है और प्रयाग में गंगा में फेंकती है। इसलिये प्रयाग से शुरू होता है गांगेय अववाहिकेय सभ्यता का मध्यम स्तर या मध्यमांश । प्रयाग के चढ़ाव में जिस प्रकार गांगेय सभ्यता है प्रयाग के उत्तर में, इसलिये उसी प्रकार की गांगेय सभ्यता नहीं है। यह सभ्यता गंगा के दक्षिणी तीर को पकड़ कर चलती है पटना के पास सोन गंगा के संगमतक। उत्तरी तोर के तरफ शुरू होता है प्राक्-गौड़ीय सभ्यता की अववाहिका । जिससे ऑस्टिक प्रभाव, तुलनामूलक विचार से कुछ कम और मङ्गोलतान्त्रिक प्रभाव, तुलनामूलक विचार से कुछ बेसी, देखने को मिलता है। यह अञ्चल प्राचीनकाल से त्रिहोत्रीय भूमि के नाम से विख्यात है। गंगा के दक्षिण में सोन-गंगा के

संगम के बाद प्राक्-गौड़ीय सभ्यता की अववाहिका शुरू होती है ठीक, किन्तु उससे मङ्गोलतान्त्रिक प्रभाव तुलनामूलक विचार से कुछ कम और ऑस्ट्रिक या गण्डोयाना या राढ़ीय सभ्यता का प्रभाव तुलनामूलक विचार से बहुत अधिक है।

नृतात्विक विचार से त्रिहोत्रीय भूमि और मगध भूमि के मध्य पार्थक्य है। त्रिहोत्रीय भूमि के मानव देह में औस्ट्रिक प्रभाव कम, मङ्गोल-प्रभाव उस तुलना में कुछ अधिक है। बहुत अधिक काले लोग देखने को कम मिलते हैं। और मगध भूमि के मनुष्य में मङ्गोल प्रभाव नहीं है, ऐसा बोलने से काम चलेगा। चिपटा-नाकवाला मनुष्य एक भी देखने को नहीं मिलता है। तुलना मूलक विचार से काले मनुष्य की संख्या अधिक है। तब प्रायः सभी उठी नाक वाले होते है। भाषागता विचार से

त्रिहोत्रीय भूमि (विदेह या मिथिला) और मगध एक ही मगधी गोष्ठी-भुक्त 𝑂 होने पर भी मैथिली भाषा पूर्वी अर्ध मागधी सञ्जात है।

और मगही भाषा पश्चिमी अर्घ मागधी सञ्जात है। दोनों के उच्चारण पार्थक्य बिशेष तरह से दीख पड़ता है। तब भी दोनों ही प्राक-गौड़ीय गांगेयः सभ्यता है।

प्राक्-गौड़ोय गांगेय सभ्यता का शेषांश हम लोग पाते हैं अंगभूमि में। अ गदेश में आकर त्रिहोत्रीय वैशिष्ट्य और मागधी वैशिष्टय एकाकार हो गया है। वहाँ वे सान्निध्य पाते हैं गौड़ीय सभ्यता का। यह अंगदेशीय गांगेय नदी सभ्यता साहेबगब्ज के पास जहाँ गंगा पहाड़ के निकट आकर पहुंचती है, वहाँ से विशुद्ध गौड़ीय

सभ्यता या व-द्वीपीय सभ्यता में रूपान्तरित होती है। बौर वहाँ से गंगा हो जाती है दक्षिणवाहिनी ।

हिमवानबोला, "मैं थोड़ा बड़ा होने पर इस विषय पर रिसर्च करना चाहता हूँ । तब आपकी बात सुनकर खूब समझ सका हूँ कि यह चर्चा वद्‍ध मान के बोरहाट वाले घर में बैठकर, या कलकत्ता के श्यामपुकुर वाले मकान में बैठ कर नहीं हो सकेगी । नदियों के किनारे ऊंची भूमि और घारों की ओर दौड़-धूप करनी होगी।"

मैंने कहा, 'तुम ठीक बोलते हो। यह सब कार्य कागजी विद्‍या से सम्भव नहीं है। और कहीं भो थोड़ी सी फाँकी देने से काम नहीं चलेगा। सोलह बना

आन्तरिकता के साथ कार्य करना होगा। और उससे सोलह आना फल प्राप्त होगा ।"

सुतनु काबोलो-, "अच्छा भाईजी, हमलोग तो प्रायः काशी के नजदीक पहुंच गये। थौड़ो दूर पर ही मिटर गेज को बनारस सिटी पहुंचेंगे। इस भाग में जो हम लोग हैं, आपने जिसको कहा गांगेय अववाहिकेय सभ्यता का मध्यमांश, इस इलाके में वैदिक प्रभाव कैसा था ? और कितना था ?

मैंने कहा, "देखो, भाषागत विचार से मैं जितना समझता हूँ, संस्कृत का जन्म राढ़भूमि में हुआ। किन्तु जिस प्राचीन भाषा को हमलोग आजकल वैदिक भाषा कहते हैं, वह आर्यों के साथ इस देश में आयी थी उत्तर-पश्चिम दिशा से । आर्यों के भारत में आगमन का

प्रथम पदचाप था सिन्धु-सोबीर और सप्तसिन्धु देश तक (शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता, काबुल और सिन्धु), इन सात नदियोंको लेकर सप्तसिन्धु था परवर्तीकाल में पञ्जाब (पञ्ज आब) अर्थात् पाँच पानी का देश । हिसार से सिन्धु और काबूल नदी को छोड़कर बचती थी पाँच नदी। यही है भारत के वैदिक प्रभाव का प्रथम चरण ।

द्वितीय चरण में आर्य लोग कुछ दक्षिण-पूर्व में आये थे। यमुना अववाहिका के उत्तरांश में उनका प्रभाव विस्तृत हुआ था। अञ्चल का नाम उनलोगोंने दिया थ। हरितवान्य (हरितवान्य हरिअहान्य हरिहाना हरियाना)। इसको बोल सकते हैं वैदिक प्रभाव का द्‌वितीय चरण ।

इसके बाद वे गंगा-यमुना की अववाहिका पकड़ कर आये प्रयाग तक। इसको हमलोग कह सकते हैं- वैदिक सभ्यता का तृतीय चरण। उसके बाद और भी पूर्व दिशा में जाकर उन लोगों ने अपना प्रभाव विस्तार किया, उत्तर में गण्डकी और दक्षिण में सोन तीर पर्यन्त । इसको बोल सकते हैं वैदिक प्रभाव का चतुर्थ चरण । इसी चरण में था सुराचीन काशीर। ज्य। हमलोग अभी उसी काशी राज्य में हैं।

और भी देखना आवश्यक है कि प्रथम चरण में जो वैदिकों की कन्या उद्‌भूता हुई थी वह परिचित थी पाश्चात्य और पैशाची प्राकृत नाम से। इस पाश्चात्य और पैशाची प्राकृत जात भाषाओं से (जैसे-पश्तो, पञ्जाबी) वैदिक तदभव शब्द का अवहेलित तथा बिखरा रूप है ।

द्वितीय चरण से अर्थात् हरियानवी भाषा में वैदिक तद्भव शब्द का अनुमान शत् प्रतिशत् से कुछ कम है। तृतीय चरण में अर्थात् माड़वारी, हड़ौती, बुन्देली, बघेली, अवधी, और ब्रजभाषा में वैदिक तद्भव शब्दों का अनुपात और कुछ कम है। और चतुर्थ चरण में, भाषा में अर्थात् भोजपुरी में वैदिक तदभव शब्दों के अनुपात और कुछ कम है। तब, यह कोई नहीं समझें कि यह प्रभाव चतुर्थ चरण में ऐकदम खतम हो गया। प्रत्यक्ष वैदिक प्रभाव इस चतुर्थ चरण में समाप्त हुआ तो, किन्तु परोक्ष प्रभाव प्राक-गौड़ीय सभ्यता का तथा गौड़ीय सभ्यता के अंग-प्रत्य ंग में, सम्पूर्ण देह में भरा रहा, भरा है।

सुतनुका बोली, "मैं ठीक तरह से समझती हूँ कि चतुर्थ चरण के मनुष्यों के चेहरे, गौ आदि पशुओं के आकार और दैर्ध्य प्राक्-गौड़ीय सभ्यता के इलाका से काफी भिन्न है।"

मैने कहा, "तुम ने ठीक ही समझा है। उस अञ्चल के मनुष्य के कपाल की बनावट प्राक-गौड़ीय सभ्यता के इलाका के मनुष्य से भिन्न है। फिर अंग इलाके में आकर मनुष्य की खोपड़ी गौड़ीय इलाके की खोपड़ी से प्रायः अभिन्न है...... अर्थात् भिन्नता पाना ही मुश्किल है।"

इलाहाबाद से काशी प्रायः दूर नहीं है। कुछ ही देर में देखते हैं मिटर गेज का बनारस सिटी स्टेशन आ गया। हिनवान गम्भीर आवाज से बोला, "मामाबाबू, अबतो

हमलोगों को उतरना होगा, फिर आपके साथ कब मिलेंगे कौन जानता है ? विषय बहुत अच्छा लगा था ।"

सुतनुका और हिमवान दोनों ही मुझे बारबार बर्द्धमान जाने की बात कहने लगे। उन्होने कहा, "मैं तो बर्द्धमान को एकदम ही भूल गया हूँ। इसलिये बर्द्धमान के साथ संयुक्त रही है मेरी कितनी स्मृतियाँ, कितने सुख-दुःख भरे ममता मधुर गान ।"

वे चले गये शहर की ओर। हमारे एकान्त सचिव आकर बोले- "ठीक पास के कमरे में उनके समधी हैं, वे छपरा जा रहे है।"

मैने कहा, "तुम्हारे समधी जब पास के कमरे में हैं तो तुम कुछ स्टेशन उनके साथ बात-चीत करते करते जाओ, मुझे कोई असुविधा नहीं होगी। कल्ह भोर में एक गङ्गा-स्नान का योग है। बनारस से मुजफफरपुर की बोर जानेवाले लोग बहुत कम है। इसलिये इस कमरे में सम्भवतः में ही एकमात्र मुसाफिर हूँ।

एकान्त सचिव पास के कमरे में जाकर बैठे, अपने समधी के पास । अनुमान से मैंने समझा वे सम्भवतः आपने समधी के साथ बैठकर घी में हुवाई लिट्टी खा रहे है।

गाड़ी ने ह्विसिल दी... चक्का चलने लगा। हठात् चलती गाड़ी में दौड़ते दौड़ते और हांफते हांफते गाड़ी में

चढ़ गये सामरिक पोशाक में सज्जित एक भद्र मनुष्य । वे भले मनुष्य शोघ्रता से उठकर कमरे में मेरे पास आगये। मैंने बाद में अच्छी तरह ताककर देखा अरे ! ये हमारे वही पन्द्रह वर्ष पहले चन्दन नगर बोड़ो-कालीतला में मिले बहनोई अरूप रतन मित्र... सुतनुका के स्वामी हैं। उनके बैठते हो मैंने कहा, "बात क्या है अरूप ? इस तरह वे तहासा हुये - हांफते हैं। फते रात के इस नौ बजे मेरे पास ! खाली कमरे में ! मैं मुजफफरपुर जा रहा हूं। तुम कहाँ जा रहे हो?" अरूप बोला, "अभो से ठीक पन्द्रह मिनट पहले अर्थात् पौने नौ बजे हठात मन में एक छटपटाहट हुई, मन में नाना प्रकार की भाव-भावनाए उठने लगी, मन व्याकुल हो उठा। सोचा, जैसे भी हो, जितनी जल्दी हो, मुझे आपके पास पहुंचना ही होगा। मेरा दृढ़ विश्वास है, हमारे मन की छटपटाहट, यह उद्वेलता आपके पास जाने से ही शान्त होगी। मैं

अभी शान्ति चाहता हू'-शान्ति । सुख नहीं चाहिये, समृद्धि नहीं चाहिये, इस विपुला धरणी की सामान्यतम ऐश्वर्य या आभरण नहीं चाहिये, सिर्फ शान्ति चाहिये ।"

अरूप बैठ गया। वह तब भी थोड़ा थोड़ा हाँफ रहा था । मैंने कहा, "तुम्हारे मन में यव छटपटाहट उठी, तब तुम कहाँ थे ?" उसने कहा, "यहाँ से बहुत दूर एक समुद्र की धारा में।"

मैंने कहा, "बहुत दूर थे, तो पन्द्रह मिनट में यहाँ कैसे आ गये ?"

वह मुह में हँसी लाकर बोला, "जल्दी जल्दी आया इसलिये हांफता हूँ। आपके पास आकर ही मन बहुत शान्त हो गया है। अभी कैसे शान्ति पा रहा हूँ।"

मैं बोला, "शान्ति अशान्ति तो मन की चीज है। बल्कि तुम हमारे साथ कुछ देर बैठकर बातचीत करो ।"

उसने कहा, "कुछ दिन पहले किसी के मुँह से सुना था, आपने नदी अववाहिका सभ्यता के विषय में कई आलोचना चर्चा की थी। यह बात क्या है? तब मैं वह समझ सका नहीं। तब अनुमान किया था, नदी अववाहिका के विभिन्न चरण में, सभ्यता का किस तरह से परिवर्तन होता है, उस विषय में आप कुछ बोले हैं।"

मैंने कहा, "तुम क्या तब ब्रिटेन में थे ?"

वह बोला, "हाँ मैं ब्रिटेन में था।"

अरूप बोला, "आप तो जानते हैं, ब्रिटेन एक छोटा देश है। इसकी किसी जगह से समुद्र पचास मील से अधिक दूर नहीं है। इसलिये उस देश में कोई बड़ी नदी है ही नहीं। अर्थात् नदी के उत्सस्थल से समुद्र का दूरत्व अधिक हो, ऐसा किसी तरह संभव नहीं है। तब भी वहाँ की कई नदियों के गतिपथ पकड़कर आगे चलकर देखा है-चढ़ाव के स्थानों की सभ्यता के साथ भाठे के स्थानों की सभ्यता में भिन्नता है, कथ्य भाषा में भी। देखिये न, टेम्प नदी की बात । टेम्स कोई बड़ी नदी नहीं है। दैर्ध्य बड़ा नहीं है, चौड़ाई भी अधिक नहीं है। टेम्स नदी के जिस भाग में जहाज का आवागमन होता है, वह

भाग वास्तविक रूप में नदी नहीं है, समुद्र की खाड़ी है। जैसे हमलोगों के कैनिंग के पास मातला नदो है। मातला को अनेक लोग समझ गे बहुत चौड़ी और प्रकाण्ड बड़ी नदी है। अनेक लोग समझेगे प्राचीन-काल में त्रिवेणी के पास गंगा से निर्गत यमुना की दक्षिणमुखी शाखा विद्याधरी, दक्षिण की दिशा में जाकर और गंगा के दक्षिण-पूर्वाभिमुखी शाखा नदी पियाली कुछ दूर जाकर दोनों मिलकर प्राचीनकाल में मातला नदी की सृष्टि हुई थी। आपात दृष्टि से बात यथार्थ कहकर समझने पर भी पियाली और विद्याधरी की मिलित जलधारा कितनी है ? असल में मातला है देश में घुसा हुआ बैकवाटर या खाड़ी, अंग्रेजी में जिसके लिये यथार्थ भाषा है 'Estuary' I टेम्स का भाठा भाग कितना बड़ा है, ठेक उसी प्रकार। इसलिये वह जो हो, टेम्स नदी को पकड़कर जितना भाठे की ओर जाया जाय, तो उतना ही अधिक प्रभाव है

एगलो-सैकशन और नौरमन भावधारा का। इसमें, फिर, नदी के दक्षिण पार ठीक से शुरूकर डोवर प्रणाली और इंगलिश चैनेल के उपकूल भाग धरकर जाने से फल्गुधारा की तरह आज भी रह गया है नौर्मन प्रभाव का आधिच्य। फिर भाठे की ओर नदी के उत्तर पार की ओर और उपकूल भाग धरकर ग्रोम्स्त्री की ओर जाने से नौर्मन प्रभाव की अपेक्षा एग्लो सैकशन प्रभाव अधिक है। ग्रोम्स्वी पकड़कर उपकूल की ओर जाने से नौम्न प्रभाव एकदम नगण्य हो जाता है। जहाँ नौर्मन प्रभाव अधिक है, वहाँ की कथ्य भाषा में लातिन-सञ्जात तद्भव शब्द अधिक हैं। जहाँ एंग्लो-सैकशन प्रभाव अधिक है, वहाँ लातिन तद्भव तुलनामूलक विचार से कम है। उच्चारणगत पार्थक्य भी (intonation) कान में पकड़ में आती है। अथवा पश्चिम दिशा में नहीं है। उसी

टेम्स नदी के सीरे (बढ़ाव) की ओर जाने से वेल्स की ओर जाने से प्राचीन ब्राइटन प्रभाव उपेक्षणीय

कथ्य भाषा के विषय में भी वही बात है। वेल्श भाषा इस कारण से एक छोटी मनुष्य के चेहरे की भिन्नता बहुत भाषा होने पर भी अपना कई वैशिष्ट्य लिये है। अधिक स्पष्ट नहीं होने पर भी एकदम उपेक्षणीय नहीं है।

तब मैने कहा, "अरूप तुम ठीक ही समझे हो। मैं देखता हूँ - तुम और हिमवान अर्थात तुम दोनों ही नदी अववाहिकेय सभ्यता के विषय में, विशेष आग्रहशील हो ।... ऐसा मैंने सोचा नहीं था ।

अरूप थोड़ी लज्जा के साथ एक हल्की हँसी हँसा ।

अरूप बोला, "आप हो तो कहीं बोले थे कि हमलोगों के राढ़ अञ्चल में वीरभूमि की वक्रेश्वर नदी के दोनों तीरपर छोटी होने परभी एक स्थानीय सभ्यता है। इतना ही नहीं उसकी मन्दिर की रचना पद्धति में भी अपना वैशिष्ट्य है.... वैशिष्ट्य है पकी मिट्टी (टेराकोटा) का काम भी। इतना ही नहीं, बातचीत की भाषा के क्रियागत रूप में भी वैशिष्ट्य है। दक्षिण वीरभूम की उसी तरह एक छोटी नदी कोपाई (कुपिता) नदी की अववाहिका में भी, उसी प्रकार की कुछ कुछ स्थानीय सभ्यता का छाप है। याद आता है- जैसे किसी ने कहा था कि बक्रेश्वर अववाहिका का पानी पृथ्वी पर एक अन्यतम उत्कृष्ट स्तर का है। वह गंधक संकृप्त धातुमय है। कोपाई अववाहिका का जल बंगालके अनेक जल की अपेक्षा

उत्तम स्तर का होने पर भी वक्रेश्वर अववाहिका के समान नहीं है। दो छोटी छोटी नदी उनके स्वयं वैशिष्ट्यपूर्ण जलधारा लेकर पश्चिम से पूर्व की ओर चली है, बंगाल की राढ़ भूमि के ऊपर नृत्य के ताल ताल में प्राचीनतम मानवसभ्यता के छन्दगीत वहन करते हुये ।

वे नानूर थाना के एक प्रान्त में आकर, मेलानपुर में जब मिलकर कुये नदी के नाम से परिचित हुई, तब दोनों की स्थानीय सभ्यता का भी मिलन हो गया। मेलानपुरने सचमुच में सर्वतोभावेन दोनों को मिला दिया। इतना ही नहीं, खूब कान पातकर सुनने से कथ्य भाषा में भी एक विशेष प्रकार का उच्चारण आगया है, जो पश्चिम वीरभूम में नहीं है। इसके अलावे स्थानीय अन्यान्य वैशिष्टय तो आया ही ।

सूचीपत्र

मैने कहा, "अरूप तुम ठीक ही कह रहे हो। तुम्हारी बातें मुझे बहुत अच्छी लगीं। हमलोगों की वीरभूम में नदी अववाहिकागत लक्षण आदि अत्यन्त सुन्दर रूप से स्पष्ट हुआ है। हमलोगों के उच्च भूमिखण्ड वीरभूम की कथ्य-भाषा में कोई विशेष प्रकार का उच्चारण नहीं है। राढ़ी बंगला की कथ्य भाषा साफ स्पष्ट रूप में है। वीरभूमि की नीचीभूमि-खण्ड में उसी र।ढ़ी बंगला में एक स्थानीय उच्चारण है। इस पर तुमने ध्यान दिया है ?

अरूप बोला, "हाँ, हमने ध्यान दिया है। खयरासोल थाना के साथ लावपुर थाना का और खयरासोल थाना के साथ मयूरेश्वर थाना का, यह सूक्ष्म पार्थक्य सिफ थोड़ी आँख खोलकर देखने से, थोड़ा कान पात कर सुनने से, पकड़ में आ जाता है। अरूप और थोड़ा हँसकर बोला-

यद्यपि यह संस्कृति की बात नहीं है, तब हँसने की ही बात है .."

मैं थोड़ा हँसकर अरूप की ओर देखा ओर बोले, " 'तब' का क्या अर्थ है ? अरूप बोला, "खयरासोल में, अर्थात उर्ध्व भूमिखण्ड वीरभूम में जैसे पोस्त की छूट है अर्थात् पोस्त का साम्राज्य है, अधः भूखण्ड वीरभूम में किन्तु पोस्त का प्रभाव सौ में ५/७ भाग समान कम है। अर्थात् उच्च भूखण्ड में पोस्त का साम्राज्य है और निम्न भूखण्ड में पोस्त राजत्व है।"

अरूप हँस उठा। मैंने भी उसकी हँसी में साथ दिया। और बातचीत के क्रम को कायम रखते हुये - मैंने कहा, "राढ़ी संस्कृति के अन्यान्य प्रतीक हैं- जैसे, कुम्हरा (कदीमा), खीरा (ककड़ी), उड़द की दाल और झुमुर-नाच

ये सब किन्तु ऊँचे, नीचे (वीरभूमि) दोनों में सर्वत्र समान रूप से चलता है, नहीं क्या ?

अरूप हँसते हँसते एक काँपते गले से बोला- हाँ भाई जो, वह भी हम देख रहे हैं। यह देखिये न, यद्यपि में मध्य राढ़ वद्‌ध मान में रहता हूँ, किन्तु मै भी तो अघः राढ़ कोन्नगर की संतान हू। हमलोगों के वहाँ भी कुम्हरा और उड़द की दाल का बहुत समादर है। और पोस्त छोड़कर तो मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं रह सकता है।"

मैंने कहा, "अच्छा अरूप, तुम तो ठीक नौ बजे दौड़ते दौड़ते हमारे कमरे में आये थे। तब प्लैटफार्म पर कितनी देर सुतनुका और हिमवान के साथ बातचीत हुई ?

अरूप अवाक् होकर विस्मित होकर बोला, "वे सब यहाँ आये थे !" मैने कहा, "हाँ, तुम जानते नहीं हो ! वे सब तो इलाहाबाद सिटी से बनारस सिटी तक मेरे साथ इसी कमरे में आये। इसके बाद जल्दी जल्दी वे लोग काशी शहर चले गये । सुबह में काशी से, सन्ध्या में किसी गाड़ी से बद्ध मान के लिये रवाना हो जायेंगे, जिससे बुधवार सुबह वद्ध मान पहुँच सकते है। वे लोग बोले थे-तुम्हारा बुधवार भोरमें दमदम हवाई अड्डे पर पहुंचने की बात है। उसके बाद लोकल ट्रेन से बद्ध मान पहुंचने में दस बज जायेंगे। घर की चाभी उनलोगों के पास है। ठीक समय पर नहीं पहुंचने से तुम्हें असुविधा होगी। इसलिये उनलोगों को किसी तरह बुधवार भोर में बद्ध मान पहुंचना ही होगा।"

अरूप बोला, "कहीं नहीं तो, हमारे साथ उनलोगों से बनारस सिटी स्टेशन में भेंट नहीं हुई। तब हाँ, उनलोगों की बात ठाक ही है। मेरी, बुधवार सुबह ठीक दस बजे बद्धमान पहुंचने की बात है।

थोड़ा रूक कर अरूप बोला, "किन्तु जो ट्रेन मङ्गलवार रात के अन्त में अथवा बुधवार सबेरे बर्द्धमान पहुंचाये, ऐसे किसी ट्रेन से उनलोगों को बद्ध मान नहीं जाना उचित है। मेरा मन कैसे छटपट कर रहा है।"

मैंने कहा- 'तुम्हारा मन जब छटपटा रहा है तो उनलोगों को किसी तरह उचित नहीं होगा कि वे किसी ऐसे ट्रेन से वर्द्ध मान जाँयें। बल्कि तुम गाड़ी आगे जहाँ रुकती है, उतर जाओ। और जैसे भी हो अभी काशी

शहर चले जाओ। और जहाँ उनलोगों के ठहरने की संभावना हो, उन्हीं सब जगहों में खोजकर, उनलोगों को बर्द्धमान जाने से रोक देना। तुम्हारे साथ मुलाकात हो जाने से और शीघ्रता से बद्धमान जाने की आवश्यकता भी नहीं रहेगी। सब साथ होकर दो चार दिन काशी रहकर तब सुविधा से आराम से सुविधाजनक ट्रेन से बद्ध मान जाना ।"

वह बोला, "ठीक ही बात कह रहे हैं- ठीक ही कह रहे हैं। गाड़ी की गति कुछ कम हुई....। नश्चय ही सामने कोई स्टेशन आ रहा है। अरूप भागते कौए की तरह दौड़कर दरवाजे के पास गया और गाड़ी खड़ी होते न होते अर्थात् चलती गाड़ी से उछलकर प्लॅटफार्म पर उतर गया। उसके इस उद्वेग का ययेष्ठ कारण था । स्टेशन में गाड़ी रुकते ही हमारे एकान्त सचिव ह्मारे कमरे में

दौड़कर आये। उनका समधीजी के साथ घी में डूबी लिट्टी का खाना खतम हुआ, उसके बाद समधीजी ने उन्हें पूरी के साथ कढ़ी-बड़ी खिलाया, अन्त में मखाने का खीर खिलाया। एकान्त सचिव मेरे पास आकर बैठे। उन्होंने पूछा, "कोई तकलीफ तो नहीं हुई?" मैंने कहा, - "तकलीफ तो एकदम नहीं हुई।"

हमलोगों की गाड़ी पश्चिम से पूर्व की ओर प्राचीन काशीराज्य की सोमा के बीच से जा रही है। हिमवान को मैंने कहा था, "यही था औौर्यत्व के प्रत्यक्ष प्रभाव का शेष चरण ।

आर्यों के भारत में आगमन के चतुर्थ चरण में काशी को ही आर्यावत्त की सीमा का नगर कह कर गण्य होता था। उस समय आर्यावत्त की पूर्व सीमा के रूप में माना

सूचीपत्र

जाता था सरयू नदी को। यह सरयू नदी, सिर्फ जलधारा के साथ आर्यत्व के प्रभाव को ले आती है, यही नहीं, उसके साथ मिला रहता है मङ्गोल और कुछ औष्ट्रिक प्रभाव । इसलिये सरयू नदी के पूर्व तीर को अनार्य भूमि के रूप में गिनती होती है। परवर्ती कालमें अवश्य यह सीमा और कुछ दीर्घायत कर गण्डक नदी को (नारायणी गण्डक) पूर्व प्रत्यन्त कह कर माना जाता था। उस समय के कान्यकुब्ज ब्राह्मण-लोग अनार्यभूमि समझकर सरयू नदी पार जाते नहीं थे। उन्हें भय होता था इससे उनके आर्यत्व क्षुन्न होगा। उर्वर भूमि के आकर्षण से जो सभी कान्यकुब्ज ब्राह्मण परवर्तीकाल में सरयू नदी के पार आये, उन्हें कान्यकूब्ज समाज में कितना अपांक्तय समझा गया ! उनका, कान्यकुब्ज ब्राह्मण बोलकर और परिचय रहा नहीं, उनका परिचय हुआ सरयूपारी ब्राह्मण ।

पाठान युग में आर्यावत्त को अन्तिम सीमा थी गाजीपुर जिला। उस समय, उत्तर भारत में मुख्यतः था तीन सूवा। पूर्व सूबा बंगाल, उत्तर पश्चिम सूबा पञ्जाब और बीच में था हिन्दोस्तान (Hindustan) | आज भो बंगाल और पञ्जाब के लोग भारत के इस भाग के लोगों को हिन्दुस्तानी कहते हैं। कोई कोई सोचते हैं कि जब हिन्दुस्तान कहने से सन्पूर्ण भारत समझा जाता है, तब एक विशेष भाग के लोगों को हिन्दुस्तानी कहना भूल है, नहीं एकदम भूल नहीं है। यह बात कही जाती है प्राचीनकाल के हिन्दोस्तान प्रदेश के आधिवासियों के लिये। हिन्दोस्तान कहने से सम्पूर्ण भारत समझा जाता है, इस विचार से नहीं ।

मुगल अमलदारी में अकबर ने जब अपने साम्राज्य को पन्द्रह सूबों में विभक्त किया, तब हिन्दुस्तान सूबा के उत्तरी भाग का नाम पड़ा अवध और दक्षिण भाग का नाम पड़ा सूबा आगरा। गाजीपुर था, उस सूबा आगरा का शेष प्रत्यन्त । अभी गाजीपुर के पूर्व में है बलिया जिला (बहलीक)। उस काल में यह बलिया जिला था। यह था गाजीपुर का एक तहशील। जैसे उसकाल में देवरिया जिला नहीं था। वह था गोरखपुर का एक तहशील। अंगरेजों ने आगरा और अवध दो प्रदेशों को जीतकर, उन दोनों को मिलाकर नामकर दिया था- आगरा और अवध का संयुक्त प्रदेश (United Provinces of Agra and Oudh) - संक्षेप में (U.P.) राजधानी बनाया इलाहाबादको । अंग्रेज राजत्व के अन्तिमकालमें राजधानी, इलाहाबाद से लखनउ स्थानान्तरित किया गया। जो भी हो, इस सरगू नदी की अववाहिका में

मङ्गोल और ऑष्ट्रिक छाप आर्यत्व के ऊपर अधिक पड़ गया। तब परवर्तीकालमें अनेक आर्य सरयू नदी के पार आगये और गण्डकी तीर को आयवित्त का प्रत्यन्त कहकर गिनने लगे। इस गण्डकी अववाहिका के पश्चिमांश शाक्यारण्य, और पूर्वांश विदेह या मिथिला नाम से प्रख्यात हुआ। यह विदेह या मिथिला आर्य उपनिवेश कहकर गण्य नहीं होता था। मैं भी इसको कहता हूं, प्राक्-गौड़ीय गाङ्गय-अत्रवाहि केय सभ्यता। राजा मिथिने इस विदेह अंशको दत्तल कर और उस भूमि को पवित्र करने के लिये त्रिहोत्रीय यज्ञ (तीन होता द्वार' यज्ञ) किया और भूमि को पवित्र कह कर घोषणा किया। त्रिहोत्रीय यज्ञ के द्वारा यह भूमि पवित्रीकृत हुई थी, लोगोंने उसका नाम रखा था तिहुत । यह शाकारण्य आर्यों द्वारा खूब बेसी आदूत नहीं होने पर भी बौद्ध युग में यथेष्ट सम.दर पाया था ।

भगवान बुद्ध कई बार यहाँ आये थे। शाकारण्य से ही परवर्तीकाल में नाम हुआ शारण (णाक्यारण्य शाक्यरण, शारण) । परवर्तीकाल में लोग भूल करके लिखते 'सारण'। इस शाकारण्य के उत्तर में था प्राचीन सुप्रसिद्ध चम्पकारण्य । रामायण में इस चम्पकारण्य का उल्लेख है (चम्मकारण्य चम्पारण्य > चम्पारण) यह शाकारण्य और चम्पकारण्य है नारायणी-गण्डक अववाहिका का पश्चिमतीर । पूर्व तीर में विदे; या मिथिला या त्रिद्रुत है। राजा मिथि द्वारा घृत या वाहित इत्यर्थे मिथि + ला + उ + स्त्रियाम् 'आ' मिथिला। बौद्ध युग में इस शाकारण्य का अन्यतम प्रसिद्ध ग्राम था हत्थी ग्राम (सस्कृत में हस्ति ग्राम), बुद्ध यहाँ कईवार आये थे।

यह हत्थीग्राम*

* ग्राम इतना अवस्था पन्न था कि वहाँ घरघर में हाथी वधा रहता ।

वर्त्तमान में हथुआ नाम से परिचित है। अंग्रेजों की अमलदारी में कई बड़ी बड़ी जमीदारियाँ थी, उनमें हथुआ स्टेट था अन्यतम ।

आ गई गण्डकी नदी-नार यणी गण्डक । इस गण्डकी नदी के तीरपर ही भारत का सबसे बड़ा पशु-मेला... हरिहर क्षेत्रमेला, अनुष्ठित होता था। मेला भूमि से कुछ ही दूर पर शोनपुर रेलवे स्टेशन है। शोनपुर गण्डकी नदो के ब्रिज को पार कर हम लोग पहुंचे मिथिला भूमि में। मोगल युग में तथा अंग्रेजों के युग के प्रारम्भ में बंगाल के मिथिला विभाग में तीन जिला थे- त्रिहुत, चम्पारण और सारण। चमारण का सदर था मोतिहारी, शारण का

छपरा और त्रिहुत का मुजफ्फरपुर। मुजफ्फर साहेब के नाम से मुजफ फरपुर शब्द आया है। जिला वहुत बड़ा था। अंग्रेज युग के प्रथमांश पर्यन्त इस उर्वर जिले में था विराट, विराट अरण्य। उस अरण्य में था अनेक प्रकार के फलोरा (वृक्षलता) और फौना (जोवजन्तु) का प्राचुर्न ।

थे इस प्रकार की नीलगाय, बाघ, अजगर, हरिण और ग्राह। मुजफफरपुर शहर के उत्तरांश में लखनदेई नदी का परित्यक्त गतिपथ आज सुवृहत् दलदल भूमि है (स्थानीय भाषा में म-अ-न), वह उस समय था और बहुत बड़ो और चारोतरक था सुविस्तीर्ण अरण्य-फ्लोरा-फौना से समृद्‌ध । इस अरण्य का वृहदश था द्‌वारभाङ्‌गा महाराज की जमिदारी में और कुछ अंश शूरषण्ड राजाओं की जमीदारी में थी और कुछ थी

बेतिया महाराज की जमीदारी में। मनुष्य ने अपने प्रयोजनवश तथा लोभवश आज उस अरण्य को खतम कर दिया है। इस त्रिहुत जिला में विशेषकर अरण्य कहकर आज और कुछ नहीं है। इस त्रिहुत जिला के वैशाली*

* यह वैशाली लिच्छवियों का देश था- विश्व के प्राचीनतम साधारण तन्त्र (oldest republic of the world)

में एक वैश्य परिवार में जन्म लिया था वर्द्धमान महाबीर, पिता का नाम सिद्धार्थ, माता का नाम त्रिशला।

यह त्रिहुत जिला तथा मिथिला आंशिक रूप से नारायणी गण्डक, आंशिक रूप से बूढ़ी गण्डक और लखनदेई नदी के अववाहिका में अवस्थित है। इसमें आर्यावत्त' के प्रभाव की अपेक्षा गौड़ीय प्रभाव अनेक गुणा

बेसी है। लिपि भी बंगला है। यह विचारणीय है कि बुद्ध और महावीर दोनों ने ही ऐसे स्थान में जन्मलिया था, जिस स्थान में आर्य प्रभाव तुलनामूलक विचार से, कम था। जो भी हो, यह त्रिहुत जिला क्षेत्रफल में काफी बड़ा था। अंगरेजों ने इसको दो टुकड़ाकर पश्चिमांश का नाम दिया मुजफ्फरपुर जिला जिसका सदर मुजफ्फरपुर ही रह गया और पूर्वांश का नाम दिया द्वारभाङ्गा जिला, जितका सदर किया उस समय के एक ग्राम में जिसका नाम था लहेरियासराय ।

(आज लहेरियासराय एक काफी बड़ा शहर हो गया है जो द्वारभाङ्गा शहर के अंग को छू रहा है)। इस मुजफ्फरपुर जिला से तैयार हुआ है-तीन जिला-सीतामढ़ी, मुजफफरपुर और वैशाली (हाजीपुर)। यह वही मुजफ्फरपुर है, मोगल युग में, जहाँ के लोग उस समय

के सूबा बंगाल में सर्वापेक्षा शिष्टाचारसम्पन्न कहकर गण्य होते थे। और द्वारभांगा जिला से हुआ है मधुबनी (जहाँ के वन में मधु की प्रचुरताथी), द्वारभांगा (दरिभङ्गा शहर नाम से)। मैथिली भाषा में इस शहर को कहते हैं 'दरभ'गा' - जिसका हिज्जे लिखा जाता है 'दड़िभङ्गा' और समस्तीपुर (समस्ती-नारायण राय के नाम से। नारायणी, गण्डक, बूढ़ी गण्डक, लखनदेई, बागमती, कमलाबालान और काशी अववाहिका से जो मङ्गोलतान्त्रिक सभ्यता आयी थी, उससे पुष्ट हुई थी प्राक् गौड़ीय अववाहिका सभ्यता की मैथिली शाखा। राजा पृथ्वी नारायण शाह के समय से नेपाल गोर्खा राजत्व शुरू हुआ। गोर्खालांग त्रिहुत जिला को जीतकर हाजीपुर तक आगये थे। उसके बाद वे लोग अंगरेजों द्वारा पराजित हुये (ब्रिटिश सेनापति थे जेनरल अक्टरलोनि, जिसके नाम पर कलकत्ता के अंगरेजों ने

एक विजय स्तम्भ निर्माण किया था। आधुनिक कालमें इतिहास अनभिज्ञ मनुष्य इसका नाम बदलकर शहीद मिनारकर दिया है) और अंगरेजों के साथ ऊनकी सन्धि हुई सुगौली में (चमारण जिला)। इस सन्धि के शर्त के अनुसार अंगरेज लोग गढ़वाल और कुमायू नेपाल के हाथ से प्राप्त किये, जिसको उनलोगोंने आगरा-अवध प्रदेश के अन्तभुक्त कर दिया और बदले में पाये चम्पारण और त्रिहुत जिला का अधिकांश अञ्चल । तब भी त्रिद्भुत के उत्तर दिशा का कुछ भाग नेपाल में ही रह गया और आज भी है।

मिथिला की प्राक्तन राजधानी जनकपुर उसी भागमें अवस्थित है। यह अभी नेपाल में है। जनकपुरी खैर का नाम बंगाल में अनेकों ने सुना है।

मैं मुजफ्फरपुर उतर गया। वहाँ बहुत कर्मव्यस्तता में दो दिन रहे ।

उसके बाद एक सप्ताह बाहर से अनेक खण्ड खण्ड स्मृति एक साथ गूथ कर घर लेकर फिर आये घर पर पहुंचने पर देखते हैं, देवूकार एक चिट्ठी बद्ध मान से हिमवान ने लिखा है। हिमवान ने लिखा है- "मामाबावू, हमलोग एक बड़ी अभिज्ञता लेकर वद्धमान पहुंचे है। काशी से मङ्गलवार सन्ध्या समय रवाना हुये थे। जानते थे मङ्गलवार की रात के अन्तिम समय अथवा बुधवार के भोर में बद्धमान पहुंच जायेंगे। मङ्गलवार रात्रि के शेषकाल में मैं और माँ एक तरह से तैयार होकर गाड़ी में बैठकर नदी सभ्यता के विषय में बातचीत कर रहे थे। उसी समय मालूम हुआ एक प्रचण्ड धक्का लगा और जोर की आवाज हुई। ऐसी अवाज मैंने जीवन में कभी भी नहीं सुनी था। थोड़ी ही देर में हमलोगों की गाड़ी टूट कर टुकड़ी टुकड़ी हो गयी। चारों तरफ आवाज ही आवाज... आवाज और

आवाज... लोगों का अत्तनाद निमिषमात्र में सब कुछ उलट-पलट गया। गाड़ी टूटकर खण्ड खण्ड हो गई। मैं और माँ छिटक कर गाड़ी से बाहर फेंका गये। गाड़ी का अङ्ग प्रत्यङ्ग सब टूट टूट कर गिर रहा है। माल-असबाब, सामान तितर बितर फेंकाया है। हमलोग तब समझे दुर्घटना हुई है। मृत्यु अनिवार्य है। हम दोनों वहाँ पड़े हैं, देखता हूँ, गाड़ी का बड़ा खण्ड टूटकर हमलोगों पर पड़ा है। हमलोग भय से चिल्ला उठे किन्तु उसके बाद। हठात् हम दोनों के मन में हुआ पिताजी (श्री अरूपरतन मित्र) जैसे दौड़कर हमलोगों के पास चले जाये। एक हाथ से हमारा हाथ और दूसरे हाथ से माँ का हाथ पकड़कर तेजी से कुछ दूर फेंक दिया। निश्चित मृत्यु के हाथ से मैं और माँ बचा गया। उसके बाद क्या हुआ वह नहीं जानता हूँ। क्यों कि हम दोनों बेहोश हो गये। सुबह का प्रकाश जब शरीर और मुंह पर पड़ा तो हमलोगों का होश लौट आया। देखते हैं हम दोनों पड़े हैं रेल लाइन के पास में, एक धानकटे खेत के एक किनारे, एक खर के ढेर पर। खर के ढेर पर आकर पड़ने से

हमलोगों को कोई गुरूतर आघात नहीं लगा। हड्डी में थोड़ा दर्द हुआ, बस । गाँव के लोग हमलोगों को घेरकर खड़े हैं। झांककर देखा दूर पर, टूटी हुई गाड़ी का ध्वंस स्तूप है लोगों के हृदय फाड़कर हृदय विदारक आर्त्त नाद और कातरोक्ति हो रही है।

स्थानीय लोग अत्यन्त सहृदय हैं। बर्द्धमान के लोग तो । लोगों के दुख देखकर सब रो पड़े । चारों तरफ से, लोग क्या करें कि हमलोगों को लाभ हो, यह पूछ रहे थे। हमलोगों के लिये सबकुछ करने के लिये वे लोग तैयार थे । हमलोग बोले- हमारे पिताजी यहाँ हैं, उन्हे हमारे पास बुला दीजिये । उनलोगों ने खोजकर आकर कहा- कोई तो नहीं है। अरूप रतन मितिर नाम के यहाँ कोई नहीं है। हमलोग ग्राम के लोगों की सहायता से अत्यन्त कष्ट में उठकर खड़े हुये । हमलोगों ने भी खोजकर देखा, पिताजी नहीं हैं शायद आये नहीं ।

रेल की सहाय्यकारी गाड़ी तब तक बर्द्धमान से आकर पहुँच चुकी है। यह जानकर हमलोग बर्द्ध मान लौट आये। जगह बर्द्धमान के बहुत नजदीक ही थो। इसलिये घर लौटने में कोई असुविधा नहीं हुई। अच्छा मामावावू, हमलोग कैसे बच गये ? इसी को क्या भाग्य कहते हैं? इसी को कपाल में लिखा है, कहते हैं ?

चिट्ठि पड़कर मैं अवाक् हो गया। हिमवान और लिखता है— "पिताजी अभी भी बर्द्धमान वाले घरपर लौट कर नहीं आये हैं। हवाई अड डे पर खोज करने गया था। वहाँ जाने पर मालूम हुआ, जिस प्लेन में पिताजी के आने की बात थी, वह प्लेन आज भी नहीं आया। क्यों नहीं आया, पूछने से पता चला उनलोगों के पास कोई खबर ही नहीं है। सामरिक कारण से उनलोगों को जानना भी संभव नहीं है। विमान अभी तक क्यों नहीं आया, जबतक सामरिक विभाग नहीं बताये, उन लोगों के तरफ से कुछ भी तब तक जानना एकदम संभव नहीं है। प्लेन पर आरोही और माल

आसवाब दोनों ही थे। इसलिये विमान के नहीं आने का कारण जानने के लिये वे लोग आप्राण चेष्टा कर रहे थे।

चिट्ठी पढ़ना खतम किया। उसी समय रेडियो से खबर बोलते हुये सुता। खबर में बोला गया, प्रायः एक सप्ताह आगे सोमवार रात्रि पौने नौ बजे भूमध्य-सागर के तीर पर एक प्रचण्ड प्रकार की विमान दुर्घटना हुई है। सामरिक कारणों से खबर इससे आगे प्रचारित प्रसारित करना संभव नहीं है। विमान के समस्त यात्री निहत हुये हैं। विमानवन्दर की तालिका देखने से उनक्ले नाम-धाम संग्रह किया गया है। विमान पर बीस भारतीय यात्रो थे। उनके भी नाम-धाम संग्रह किया गया है। और मृत देह इस तरह से जल गये है कि उनका सनाख्त करना भी संभव नहीं है। इन भारतीय यात्रियों के नाम हैं (१)(२)........ (३)......। यात्रियों में एक कलकत्ते के थे। उनका नाम है-श्री अरूप रतन मित्र। मैं विस्मय से अवाक रह गया। समय मिला कर देखा, सोमवार रात्रि नौ बजे वनारस सिटी स्टेशन

में अरूप रतन दोड़ते दोड़ते और हांफते हांफते हमारे कमरे में चढ़ा था। उसने कहा था-प्रन्द्रह मिनट से अर्थात् पौने नौ बजे से उसके मन में बड़ी छटपटाहट चल रही है मन उद्वेलित हो उठा है। शान्तिः की खोज में वह मेरे पास आया था। वह बहुत दूर से आया था, इसलिये हाँफ रहा था ।

खबर सुन कर क्या करें समझ में नहीं आ रहा है। हिमवान को चिट्ठी का मैं क्या जबाब दूँगा ?

मानवता नवयुग के द्वार पर

सुप्राचीन अतीत में मनुष्य सृष्टि के आदिपर्व में जो कि आज से अनुमानतः दस लाख वर्ष पहले था जब इस पृथ्वी पर मानव शिशु

का आविर्भाव हुआ था, तब उनके मस्तिष्क का आधार अर्थात् क्रेनियम बहुत ही छोटा था। मस्तिष्क की सामर्थ्य अत्यन्त नगन्य थी। मुट्ठीभर स्नायुकोषों के द्वारा उनकी चिन्तन शक्ति और चिन्तन तरंगें उत्पन्न होती था जो बहुत ही सीमित थी और जो थोड़े परिमाण के स्नायुतन्तु गंभीर मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखते भी थे वह अपर्याप्त थे। आज का मनुष्य बहुत उन्नत है। उनके मस्तिष्क की प्रभूत उन्नति हुई है। उनके स्नायुकोष भी पूर्व की तुलना में बहुत उन्नत हैं और यह उन्नत मानव मस्तिष्क तथा स्नायुकोष अनेक सूक्ष्म भावधाराओं को सहज रूप में ही व्यक्त कर सकते हैं।

कुछ पहले ही कह चुका हूँ कि मानवजाति एक नवयुग के द्वार पर आ पहुंची है। आज हम अपने मूल्यवान समय को किसी रूप में भी बर्बाद नहीं कर सकते । मनुष्य मात्र के मध्य जितनी भी शक्ति सामर्थ्य है उस सब का सर्वाधिक उपयोग करना जरूरी है। मानव

उत्पत्ति के प्रथम स्तर पर अर्थात् मानव सभ्यता के उषा लग्न में मनुष्य और पशु में अधिक अन्तर नहीं था, ऐसा कहना ही उपयुक्त है। उस युग के एप-मैन (अनुन्नत मनुष्य) प्रोटोएप और मनुष्य के मध्य की पार्थक्य रेखा बहुत अस्पष्ट थी। दैहिक रूप में मनुष्य प्रायः वानरवर्गीय जीवों की तरह ही थे। उस युग के अविकसित मनुष्य का कोई सामाजिक, अर्थनैतिक और सांस्कृतिक जीवन नहीं था, आध्यात्मिक जीवन तो था ही नहीं।

समय आगे बढ़ चला। मानवजाति कुछ आभ्यन्तरीण परिवर्तन की धारा को पकड़ आगे बढ़ चली। मानव देह के स्नायुकोषों के विकास के साथ ही साथ मनुष्य के चिन्तन जगत में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई दिया। स्नायुकोषों के विकास होने में उसके दैहिक क्षेत्र में, उसके भावराज्य में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया। ऐसे कुछ लोग सामने आए जो समाज के नेता रूप में माने गए। इस तरह से मानव समाज में वीर पूजा का प्रवर्तन हुआ। यह मानव

सभ्यता के आरम्भ की बात है। मानव के सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रथम सूत्रपात हुआ।

यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिकता का विकास भी इसी समय से ही शुरू हुआ। मनुष्य के मूल्यबोध का उन्नयन हुआ। मानसिक मूल्यों को यथायोग्य मर्यादा दी गई। इस तरह से मनुष्य जाति एक नूतन स्वर्णिम युग की ओर बढ़ चली। चाहे उस समय कोई सुस्पष्ट अर्थनैतिक जीवन का आरम्भ नहीं हुआ। था पर तब तक कुछ सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का आरम्भ हो चुका था।

क्रमशः सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन नजर आए। एक के बाद एक अनेक युग आए और चले गए। इसी बीच अनेक छोटी बड़ी युगान्तरकारी घटनाएं घटती रहीं। इन सब की कथाओं को ही प्रागैतिहासिक मानव के इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है।

प्रागैतिहासिक युग के इतिहास के प्रथम अध्याय में बौद्धिकता का युग शुरू हुआ। काल-क्रम में बौद्धिक चर्चा का रास्ता पकड़ कर बौद्धिक अपचय (Intellectual Extravaganza) शुरू हुआ। सहज सरल विश्वासों के बदले मनुष्य के मन में भावजड़ता (dogma) ने बसेरा किया। नाना प्रकार के कुसंस्कारो से घिरे भ्रान्त विश्वास, नाना प्रकार के धर्ममत, अनेक मतवाद आगे आ गए। अन्ध विश्वासोंने (Jogma) ने मनुष्य के समाज को विभ्रान्ति के पथ पर ढकेल दिया। इन समस्त २. विश्वासों और मतवादों के साथ मनुष्य की सामाजिक प्रगति का कोई सम्पर्क नहीं है। उन्होंने समाज की बड़ी क्षति की है। समाज की मूल संरचना-कहा जा सकता है कि समाज का बहुत बड़ा अंश, इस भावजड़ता के शिकंजे में जा फंसा। यही समाज की मुख्य धारा बनी। जो लोग इसे पसन्द नहीं करते थे, जो युक्ति-पथ पर चलना चाहते थे, समाज उन्हें अवांछित मनुष्य कह कर पुकारता था।

और भी परवर्ती काल में इस भावजड़ता के विरूद्ध मनुष्य की बुद्धि व विवेक आ खड़ी हुयी, उसकी युक्तिपूर्ण मानसिकता। उन्नत मस्तिष्क, उन्नत स्नायु, स रचना, उन्नत दौहिक स्वरूप के अधिकारी मनुष्यों ने सोचना शुरू किया कि किसी की विशेष जनगोष्ठी, जाति या उपजाति के लिए कुछ भी करना बड़ी बात नहीं है- हम जो कुछ भी करेंगे और मनुष्यों के लिए करेंगे, पूरी मानवजाति के लिए करेंगे। पर यहीं पर अन्त नहीं और मानव जीवन का यही मूल आदर्श नहीं हो सकता।

प्यालिजोयिक युग के मध्य में हमें सोचना होगा- कि हमारा करणीय क्या है ? सृष्टि के सीने पर मनुष्य जाति ही क्या सब कुछ है ? ऐसा तो नहीं हो सकता। यह संसार केवल मनुष्यों को ले कर ही नहीं है। अन्य अनेक प्राणी- जीव जन्तु, वृक्षलताएँ- ये सब भी तो हैं इन्हें भी जीने का अधिकार है।

हमारा यह विश्व केवल मनुष्यों का ही विश्व नहीं - यह विश्व सबों का है। विश्व चराचर में समस्त सृष्ट जीवों का इस विश्व पर समान अधिकार है।

हमारा यह जो युग है यह नश्यमानवतावाद का युग है। जिस युग में मानवतावाद ने समस्त जीवों के लिए प्राणरस दिया है। हम सब के लिए, और सभी को ले कर ही हमारी यह नूतन सामाजिक संरचना - एक नव्यमानवता की भित्ति पर एक नया समाज बनाना होगा। इस विषय में किसी तरह की आनाकानी नहीं चलेगी। इस कार्य में यदि हम और देर कर दें हो हमारा अस्तित्व ही विनष्टि की कराल छाया से विपन्न हो उठेगा। इस विषय में हमें सजग होना होगा। हमें अपने मूल्यवान समय के एक भी मुहुर्त को नष्ट करना उचित न होगा।

सूचीपत्र

कुछ पहले ही कह चुका हूँ कि आज मानवता नवयुग के चौखट पर आ पहुँची है। इस युग में अनेक युगान्तकारी घटनाएं घट रही हैं। तुम लोग इस संशोधित कार्य व दायित्व को उठाने के लिए प्रस्तुत हो तो ? याद रखना मानव समाज की भावजड़ता या डोग मा का युग समाप्त हो गया। समस्त मानवजाति की भावानुभूतिः तथा मानस-प्रवणता एक तरह की है। और महत्तर जीवन को पाने के लिए जो प्रयोजन है, उसके लिए जो दायित्व जरूरी है वह भी एक ही तरह की है। मनुष्य यात्रा की आवश्यकताएँ भी एक ही जैसी हैं। मानव समाज एक और अविभाज्य है। इस कारण इस उद्देश्य की पूति के लिए समाज की विभिन्न गोष्ठियों में एक शान्तिपूर्ण परिवेश को अक्षुण्ण रखना होगा। इसी कारण सब के साथ जाति, धर्म बादि की बंधन को छोड़, सब के कल्पाण के लिए एक सामाजिक साम्यावस्था को बनाए रखना होगा। धरती के किसी कोने में भी खाद्य व पानीय जल की कमी नहीं होने दी जा सकती। हमारी इस धरती पर अनेक

ऐसे देश हैं जहाँ और भी उत्पादन किया जा सकता है, जहाँ विशुद्ध पानीय जल का प्राच्यं है। इस तरह से इन प्रदेशों में प्राप्त प्रचुर जल, अन्न आदि आवश्यक वस्तुएँ धरती पर अन्य स्थानों में भेजी जा सकती हैं। पृथ्वी पर किसी को भी कहीं पर निराहार रह कर मरना नहीं पड़ेगा। हम सब इस विश्व के लिए हैं और विश्व की समस्त सम्पदाएँ सब के भोग के लिए है।

इस के विषय में अनेक शान्तिपूर्ण मधुर शब्दों का व्यवहार किया गया, कितने शास्त्र-वाक्य व नीतिपूर्ण बातें कही गई। परन्तु दुर्भाग्यवश जिन्होंने इन तथाकथिताः शान्ति की ललित वाणी सुनाई वे भी अपने अस्त्रों को तेज करना नहीं भूले, अपने संचित बारूद से स्तूप को उत्तप्त करने से नहीं चूके। इस तरह उनकी उस शान्ति के प्रयास में यथार्थ आन्तरिकता का अभाव था। हम शान्ति की ललित वाणी नहीं सुनना चाहते। हम मनुष्य जाति की सब तरह से उन्नति चाहते हैं। और मनुध्य की उन्नति के साथ साथ समस्त

जीवजगत - जड़ और चेतन की भी उन्नति होगी। इसलिए आज प्रयोजन है मानव अस्तित्व का अधिरोहण अर्थात मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति । हम भावजड़ता नहीं चाहते। हम चाहते हैं विचारशीलता युक्तियुक्त म.नसिकता जो मनुष्य के परमधाम परमपुरुष की ओर परिचालित कर सके । एकमात्र परमपुरुष का वह परमधाम है, वह अन्तिम चरण है। वहीं है. समस्त जीवों का चरम तथा परम आलम्बन ।

भूमा केन्द्र से दिन रात अगणित तरंगे उत्सारित हो रही हैं। हर एक सरचना का अपना तारंगिक दैर्ध्यं है, अपना निजी छन्द है। परन्तु जीव की गति जब परमपुरुष की ओर है तब समस्त अन्द ही मिल कर एकाकार हो जाते हैं। नाना वर्ण, नाना छन्द, नाना तारंगिक देयं - अपनी भिन्न भिन्न सत्ताओं को भूल कर चरम एकत्व में समाहित हो जाती हैं। पहले भी कह चुका हूँ लक्ष्य या

आलम्बन एक ही है- अनेक नहीं। भेदात्मक बहुत्व या नानात्व नहीं। परमधाम एक ही है-ऐक व अभिन्न।

इस प्रकार की नव्यमानवतावाद ही विश्व को जिलाए रख सकता है- मनुष्यजाति का परित्राण कर सकता है। इस कारण आज हमें नव्यमानवतावाद का जयगानाः करना होगा।

अभिमत ५/१०३

(रांची ५६/५/१९८४)

मानव इतिहास और सामूहिक मनस्तत्व

सूचीपत्र

सामूहिक आकुति या सामवायिक मनस्तत्व को केन्द्र बनाकर मानव इतिहास गढ़ उठता है। अतीत में इतिहास के सम्बन्ध में जनगण की धारण थी कि इतिहास का माने है कि कोई राजा और रानी कुछ दिन राज्य करेंगे, कई युद्ध परिचालना करेंगे, किसी में उनकी जीत होगी, किसी में उनकी हार होगी, कहीं वे शत्रुपक्ष की हत्या करते हैं, कहीं वे लोग स्वयं आहत होते हैं- इतिहास इन्हीं सब की घटन। पञ्जी है। परन्तु आज इतिहास के सम्बन्ध में धारणा सम्पूर्ण भिन्न है। आजकल इतिहास कहने से केवल राजा-महाराजाओं का इतिहास नहीं समझा जाता है। इतिहास कहने से साधारण मनुध्य के भी इतिहास को समझा जाता है। साधारण मनुष्य की एषणा, आकुति, मनो-जागतिक चिन्ताधारा, ये सब कुछ ही इतिहास का आलोच्य विषय है।

सुप्राचीन समाज में नारी-पुरुष का समानाधिकार था। परवर्तीकालमे, समाज में, नारी के गुरुत्व की वृद्धि होना, एक नयी समाज व्यवस्था का उद्भव हुआ, जिसको कहा जा सकता है मातृगत (Matrilinial) और मातृप्रधान (Matriarchal) व्यवस्था। इसके और परवर्तीकालमें दैहिक शक्ति का गुरुत्व अन्यान्य शक्तियों की उपेक्षा, श्रेष्ठ रूप में देखा गया। स्वाभाविक रूप से नारी की अपेक्षा, पुरुष की दैहिक शक्ति अधिक होती है। इसलिये पुरुष का गुरुत्व बढ़ गया। इसी के फलस्वरूप एक नये प्रकार की समाज-व्यवस्था का उद्भव हुआ, जिसको कहा जा सकता है - पितृगत (Patrilinial) और पितृप्रधान (Patriarchal) समाज व्यवस्था। किन्तु आजके युग में, मनुष्य अनुभव करता है कि बौद्धिक शक्ति की तुलना में, दैहिक शक्ति का गुरुत्व कम है। अतीत में मनुष्य, एक हथौड़ी चलाने के लिये प्रचूर दैहिक शक्ति का प्रयोग करता था।

किन्तु आज एक लोहे की हथौड़ो की अपेक्षा वैद्य तिक हथोड़ी शत गुण अधिक शक्तिशाली है। और एक वैद्य तिक हथौड़ी को, एक अति साधारण इलेक्ट्रिक स्विच दबा देने से चलाया जाता है। इन साक्षात् प्रमाणों के कारण बौद्धिकता का महत्व बढ़ गया है। हाँ, अभी प्रश्न उठता है- नारी जाति का जागरण कैसे होगा ? भविष्य के विषय में अभी कई बातें बोलना आवश्यक समझता हूँ। नारी जागरण के फलस्वरूप भविष्य में नारी-पुरुष का समान अधिकार होगा। कोई किसी से बड़ा या छोटा कहकर, गण्य नहीं होगा। अनागतकाल में सबसे अधिक महत्व प्राप्त

मानव इतिहास

और सामूहिक मनस्तत्व

सामूहिक आकुति या सामवायिक मनस्तत्व को केन्द्र बनाकर मानव इतिहास गढ़ उठता है। अतीत में इतिहास के सम्बन्ध में जनगण की धारण थी कि इतिहास का माने है कि कोई राजा और रानी कुछ दिन राज्य करेंगे, कई युद्ध परिचालना करेंगे, किसी में उनकी जीत होगी, किसी में उनकी हार होगी, कहीं वे शत्रुपक्ष की हत्या करते हैं, कहीं वे लोग स्वयं आहत होते हैं- इतिहास इन्हीं सब की घटन। पञ्जी है। परन्तु आज इतिहास के सम्बन्ध में धारणा सम्पूर्ण भिन्न है। आजकल इतिहास कहने से केवल राजा-महाराजाओं का इतिहास नहीं समझा जाता है। इतिहास कहने से साधारण मनुध्य के भी इतिहास को समझा जाता है। साधारण मनुष्य की एषणा, आकुति, मनो-जागतिक चिन्ताधारा, ये सब कुछ ही इतिहास का आलोच्य विषय है।

सुप्राचीन समाज में नारी-पुरुष का समानाधिकार था। परवर्तीकालमे, समाज में, नारी के गुरुत्व की वृद्धि होना, एक नयी समाज व्यवस्था का उद्भव हुआ, जिसको कहा जा सकता है मातृगत (Matrilinial) और मातृप्रधान (Matriarchal) व्यवस्था। इसके और परवर्तीकालमें दैहिक शक्ति का गुरुत्व अन्यान्य शक्तियों की उपेक्षा, श्रेष्ठ रूप में देखा गया। स्वाभाविक रूप से नारी की अपेक्षा, पुरुष की दैहिक शक्ति अधिक होती है। इसलिये पुरुष का गुरुत्व बढ़ गया। इसी के फलस्वरूप एक नये प्रकार की समाज-व्यवस्था का उद्भव हुआ, जिसको कहा जा सकता है - पितृगत (Patrilinial) और पितृप्रधान (Patriarchal) समाज व्यवस्था। किन्तु आजके युग में, मनुष्य अनुभव करता है कि बौद्धिक शक्ति की तुलना में, दैहिक शक्ति का गुरुत्व कम है। अतीत में मनुष्य, एक हथौड़ी चलाने के लिये प्रचूर दैहिक शक्ति का प्रयोग करता था।

किन्तु आज एक लोहे की हथौड़ो की अपेक्षा वैद्य तिक हथोड़ी शत गुण अधिक शक्तिशाली है। और एक वैद्य तिक हथौड़ी को, एक अति साधारण इलेक्ट्रिक स्विच दबा देने से चलाया जाता है। इन साक्षात् प्रमाणों के कारण बौद्धिकता का महत्व बढ़ गया है। हाँ, अभी प्रश्न उठता है- नारी जाति का जागरण कैसे होगा ? भविष्य के विषय में अभी कई बातें बोलना आवश्यक समझता हूँ । नारी जागरण के फलस्वरूप भविष्य में नारी-पुरुष का समान अधिकार होगा। कोई किसी से बड़ा या छोटा कहकर, गण्य नहीं होगा। अनागतकाल में सबसे अधिक महत्व प्राप्त करेगा, वह है बौद्धिक प्राखयं । और उस प्रखर बुद्धि पर केवल पुरुष या नारी का विशेवाधिपत्य रहेगा, ऐसी कोई बात नहीं। और जिस के पास यह प्रखर बुद्धि रहेगी, वही समाज में प्रतिष्ठा लाभ करेगा। अवश्य ही इस विषय में यह कहना आवश्यक है, कि सबों की बुद्धि का प्राखयं समान नहीं होगा।

इतिहास, सामूहिक मनस्तत्व की भित्ति पर रचित होता है। राजतन्त्र के दिन चले गये। राजतन्त्र के उस गौरवोज्ज्वल युग में राजा या रानों ही इतिहास के केन्द्रविन्दु थे। और इतिहास कहने से समझा जाता था राजा-महाराजाओं का इतिहास। परवर्तीकालमें इतिहास हुआ मन्त्री-आमात्यों का इतिहास। बऔर शीघ्र ही ऐसा दिन आ रहा है जब इतिहास साधारण मनुष्य के विषय में रचित होगा। राजतन्त्र के युग में कोई सोच भी नहीं सकता था कि राजा-रानी को छोड़कर इतिहास लिखा जा सकता है। आज भी जहाँ राजतन्त्र नहीं है, वहाँ भी सरकारी भवन आदि को राजभवन कहा जाता है। 'राजा' शब्द के जादू से मनुष्य अपने को, पूरी तरह से मुक्त नहीं कर पाया है।

किसी एक शहर में मैंने देखा था- साइनबोर्ड में लिखा था, "राजानुकूल अस्पताल", जिसका अर्थ है सरकार द्वारा परिचालित

अस्पताल। उस काल में, दिवाने खास में, राजा और अमीर उमराव ही प्राधान्य पाते थे। आजकल सरकारी कर्मचारियों का ही प्राधान्य है। इसलिये नया शब्द "सेक्रेटेरिवेट" का उद्‍भव हुआ है। अनुरूप भाव से साधारण मनुष्य के बीच भी एक नयी चेतना जगेगी। साथ ही साथ जनसाधारण के बीच शक्ति और बुद्धि की प्रखरता भी जगेगी, उसके फलस्वरूप ही इतिहास लिखने की धारा पलट जायेगी। वस्तुतः एक नये ढाँचे पर इतिहास की रचना, इसके पहले ही बदलना शुरू हो गया है, भविष्य में और बदलेगा। याद रखोंगे तुमलोग मनुष्य के समाज में कोई आपांक्तय नहीं है। एक सौ वर्ष की अति वृद्धा विधवा महिला, उसके जीवन का भी मूल्य अपरिसोम है। इस विश्व सभा में, वह भी वर्जनीय नहीं है; वह भी तुच्छ नहीं है, हमलोग उसका ठीक मूल्यायन नहीं कर सकने कारण, हमलोग सोचते हैं, वह बूढ़ी पृथिवी का बोझा है। ऐसा समझना, हमलोगों की बुद्धि की अल्पता का निदर्शन है, उसका दोष नहीं है। इस तरह सब के पीछे है एक ऐतिहासिक प्रयोजन।

हमलोग गंभीरता से सोचते नहीं हैं। इसका क्या प्रयोजन है, यह खोजकर बाहर निकालने के लिये यदि गंभीरता से विचार करले, तो जान पाते, प्रत्येक बात में, पृथ्वी के प्रत्येक अति क्षुद्र उह-

अवोह के पीछे यही चीज है। यदि हमलोग गहराई से विचार करें, गहराई से देखें, इतिहास खोजने की चेष्टा करें, तो देखेंगे कोई भी, कुछ भी व्यर्थ नहीं है। सब कुछ घटित होते चला है भविष्यत् के एक विराट सम्भावना लेकर। विश्व का कोई भी, कुछ भी गुरुत्वहीन नहीं है। इसलिये, किसीका, किसी वस्तुका, तुच्छ-ताच्छिल्य करना उचित नहीं है।

अणु-परमाणु को एक काल में बहुत ही क्षुद्र और महत्वहीन कहकर माना जाता था। किन्तु आणविक बम के आविष्कार के बाद से मनुष्य उसी अणु को भय की दृष्टि से देखने लगा। कोई ठीक तरह से नहीं जानता है, किस वस्तु में किस प्रकार की सम्भावना निहित है। सिर्फ गहराई से गवेषणा करने पर ही किसी

वस्तु की अन्त निहित शक्ति के सम्बन्ध में, मनुष्य एक सम्यक धारणा निश्चित कर सकता है। जगत में सभी एक ऐतिहासिक प्रयोजन पूर्ति के लिये ही आते हैं। आनन्दमार्ग का भी, इसलिये, किसी ऐतिहासिक उद्देश्य की परिपूत्ति के लिये आविर्भाव हुआ है।

उस समय मेरी उन्न बहुत कम थी। वह भी बहुत हो गये। उस समय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बड़े बड़े अविचार चल रहे थे। सङ्गीत, साहित्य, सिनेमा में, सामाजिक अवक्षय का सुस्पष्ट चिन्ह, दृष्टिगोचर होता था। सर्वत्र ही व्यापक शोषण चल रहा था। साम्राज्यवादी शोषण, सामाजिक शोषण, अर्थनीति के शोषण इस प्रकार के कितने तरह के शोषण चल रहे थे। समाज में नारी की अवस्था बहुत ही खराब थी। कुछ दिन पहले स्त्रियों को वोट देने का कोई अधिकार नहीं था । प्राचीन बिहार के वैशाली में जो लिच्छत्री प्रजातन्त्र प्रचलित था, वहाँ नारियों को वोट देने का अधिकार था (आज से प्रायः ढाई हजार वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर सर्व

प्रथम प्रजातन्त्र था लिच्छवि प्रजातन्त्र) । वे प्रतिद्वन्द्विता में भाग ग्रहण कर नहीं पाती थीं। सर्वत्र ही नारी के अधिकार को संकुचित करने की एक प्रकार की प्रवणता थी। किसी देश में, किसी नारी को कानून की दृष्टि में, समानाधिकार नहीं था। सिर्फ साम्प्रतिक काल में कुछ संघर्ष के बीच नारियों ने कुछ अधिकार अर्जन किया है। कुछ शोषक पुरुष हैं सब पुरुष शोषक नहीं थे, उनमें अनेक विवेकवान थे) नारियों का शोषण करना चाहते थे, वे हो नारी समाज को स्वाधीनता देने को प्रस्तुत नहीं थे। वे समझते थे कि महिलायें मुक्ति-मोक्ष की अधिकारिणी नहीं हैं। उनके मतानुसार नारियो को, पुरुषों का सिर्फ दासत्व, उचित था। यदि वे मुक्ति-मोक्ष चाहें तो, उन्हें समाज में पुरुष होकर जन्मग्रहण करना होगा। उसके बाद ही वे मुक्ति-मोक्ष लाभ कर सकती हैं। विचार कर देखोतो, यह पुरुषों की उद्धता और दुष्ट बुद्धि कितनी है ? उन्होंने नारी समाज के मन में स्थायी भाव से हीनमन्यताबोध जगाकर, नारियों का शोषण करने का कितने हजार प्रकार के उपायों का उद्भावन किया था।

आज उनकी समस्त दुर्बुद्धि की कपटता स्पष्ट हो गई है। नारियों के शोषण के और अनेक उदाहरण हैं। फ्रान्स के कानून के अनुसार, नारियों को सिंहासन पर आरूढ़ होने का अधिकार नहीं था। मनु के युग में, स्वामी स्त्रियों को जूते से मारते थे, किन्तु आजकल ऐसा होने से मनुष्य इस से क्षुब्ध होकर जोड़ से प्रतिवाद करेंगे।

सामूहिक मनस्तत्व में एक द्रुत परिवत्तं न आ रहा है। मनुष्य के समाज में दैहिक शक्ति की अपेक्षा, बुद्धि का मूल्य बढ़ चला है, और बुद्धि केवल मुट्ठी भर अहिलाओ का नहीं, वरन् सामूहिक जीवन में भी बढ़ रहा है। इसलिये, यह परिवत्तंन है। यह परिवत्त'न और आयेगा, और त्वरान्वित होगा।

(श्रावणी पूणिमा, १९ अगस्त, १९८४ कलिकाता)

जीवन के सभी क्षेत्र में पुनर्जागरण का प्रयोजन

आज का आलोच्य विषय है "जीवन के सभी क्षेत्र में पुनर्जागरण का प्रयोजन" 'रेनासां' शब्द का शुद्ध अर्थ है- पुनर्जागरण, जो मानवता इतने दिनों तक सोई हुई थी, आज उसे अन्ध तमित्रा से जगाना होगा और जीवन के सभी क्षेत्र में, अस्तित्व के सभी स्तर में, कुछ नया करना होगा।

जीवन का तीन गुरुत्वपूर्ण स्तर है, जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक। जागतिक स्तर में और अनेक उपस्तर हैं। जैसे वैज्ञानिक आविष्कार, सामाजिक अग्रगति और उसके साथ

सूचीपत्र

राजनैतिक अर्थनैतिक-सांस्कृतिक जीवन भी है। कोई कोई यह बात कहते हैं कि बीसवीं शताब्दी है विज्ञान का युग ! नहीं बात ठीक नहीं है। बीसवीं शताब्दी ही क्यों कहेंगे ? प्रागैतिहासिक युग से ही अर्थात् अनुमानस दस लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर मानवजाति के आनेके ऊषालग्न से ही, विज्ञान के साथ मनुष्य का जीवन, अच्छेद्य भाव से सम्पकित है। जितने दिनों तक एक भी मनुष्य बचा रहेगा, उतने दिनों तक विज्ञान का युग रहेगा।

वर्त्तमान कालमें, विज्ञान का अर्थ ही है नये नये अस्त्र तैयार करना, और योद्धाओं का हाथ शक्तिशाली करना। विज्ञान का मूलमन्त्र यह होना उचित नहीं है। मानक जीवन के प्रारम्भिक कालमें भी ऐसा नहीं था। हाँ, अस्त्रों का प्रयोजन तो है, वह योद्धाओं के हाथ को मजबूत करने के लिये नहीं, सत् आदर्श, सत्चिन्तन, सत् मनुष्य की रक्षा करने के लिये, अस्त्र की आवश्यकता है। विज्ञान का व्यवहार कला की तरह ही होना उचित है। अर्थात् विज्ञान सेवा,

और कल्याण के लिये होगा। साहित्य जैसे सेवा और कल्याण के लिये है, वैसे ही विज्ञान को सेवा तथा कल्याणमूलक होना होगा।

विज्ञान, सर्वदा मानव समाज की यथार्थ प्रगति के लिये प्रयुक्त होना चाहिये।

अब, सामाजिक प्रसंग की ओर आया जाय। सामाजिक स्तर में अनेक उपस्तर हैं। सामाजिक स्तर में कई उपस्तर हैं और सामाजिक प्रगति का यथार्थ रूप ही है, सब प्रकार के सामाजिक वैषम्य को दूर करना। किसी एक परिवार के सदस्य के समान वृहत्तर मानव-समाज के प्रत्येक सदस्य का समान अधिकार होना चाहिये। किन्तु वहाँ तो वैषम्य ही रह गया है। सुतरां, पुनर्जागरण-आन्दोलन के माध्यम से सब तरह के वैषम्यको दूर कर मानव समाज के साम्य को. भावगत और अस्तित्वगक्त सन्तुलन को प्रतिष्ठित करना होगा।

हमलोगों के समाज में अनेक प्रकार के वैषम्य हैं। दृष्टान्तस्वरूप, जैसे जैव सं'रचनागत पार्थक्य है, उसे क्षुद्र स्वार्थसिद्धि के उद्देश्य के उपयोग में लाया जाता है। मनुष्य और पशुमें, मनुष्य और उद्भिद् में, पणु और उिद्भद् में यही पार्थक्य कार्य करता चलता है। एक मनुष्य जैसे बचना चाहता है, वैसे ही एक कबूतर भी बचना चाहता है-जैसे ही बचना चाहता है एक कौआ, और एक गाछ भो। हमारे लिये जैसे हमारा जीवन अति प्रिय है, वैसे ही सभी सृष्ट सत्ताओं को समान रूप से अपना जीवन प्रिय है। इस पृथ्वी पर बचे रहना, जैसे मनुष्य का जन्मगत अधिकार है। वैसे ही बचे रहना पशुजगत और उिद्भद् जगत का भी जन्मगत अधिकार है। अधिकार की स्वीकृति देने के लिये, तथा समस्त समाज से स्वीकृति लेने के लिये रेनेसां आन्दोलनकारियों को अवश्य हो कुछ वास्तवोचित करना होगा।

इस समाज में जन्मगतभित्तिक पार्थक्य भी रहता है। जन्म की मित्ति पर ही तथाकथित उच्चवर्ग-निम्नवर्ग तैयार हुआ है। किसी विशेष देश का मनुष्य अनाहार से सूखकर मर रहा है, और किसी देश का मनुष्य मरता है अमिताहार से, अजीर्णता से, और लोभ के वशवत्र्ती होकर। यह एक सामाजिक वैषम्य है, जो खूब खराब है। यह सब स्वार्थी मनुष्य द्वारा श्रृष्ट है, परमपुरुष द्वारा नहीं। रेनाँसाँ आन्दोलन को इस वियय में कुछ गठनमूलक कार्य करना होगा। सभी समान हैं, मनुष्य के विचार से सब का आस्तित्विक मूल्य समभाव से प्रोज्ज्वल है।

इसके बाद है वर्णगत तारतम्य। भौगोलिक कारण से तथा ऐतिहासिक कारणों से, समाज में वर्णगत पार्थक्य हो गया है। किसी के शरीर का रंग गोरा किसी का काला, किसी का बहुत काला, किसी का हल्दी रंग (पोला) का है। ये सब कोई मौलिक पार्थक्य नहीं है- ये सब हैं बाहरी पार्थक्य। इस प्रकार के आपातः पार्थक्य

का भित्ति के ऊपर क्यों पृथक शास्त्र की रचना होगी ? नहीं, वर्ण के ऊपर भित्ति कर कोई पार्थक्य हो नहीं सकता, और न उसपर भित्तिकर कोई सामाजिक वैषम्य ही मान्य होगा।

इसके अलावे है नारी-पुरुष का पार्थक्य। नारियाँ अनेक सामाजिक-राजनैतिक अधिकार से बञ्चित हैं। तुमलोग जानते हो, यही कई सौ वर्ष पहले पृथिवी के अनेक देश में उनके वोट देने के अधिकार नहीं थे। ऐसा क्या ? वे भो तो मनुष्य हैं। पुरुषों की तरह उनके भी समान अधिकार हैं। पुनर्जागरण आन्दोलन के अग्रदूतों को सामाजिक साम्य की प्रतिष्ठा की स्थापना के लिये आन्दोलन शुरू करना होगा और नारी-पुरुषगत इस प्रकार की असमानता को दूर करना होगा। महिलायें क्या गौ आदि पशु है या कपड़े की पोटली हैं? जिसको मनुष्य व्याह के समय दान के रूप में देते हैं! उन्हें क्या क्रीतदासीयों की तरह दूसरों के हाथ विक्री कर देना होगा। जितने दिनों तक नारियों के साहस और बुद्धि का अभाव

था, उतने किन्तु विचार करो तो यह बात कितना प्रकट रूप में, चावुक मारने की अपेक्षा धोबी के घर समाज में पुरुष दिनों तक उन सबों ने यह सब सहन किया। अवमाननाकर है? उनकी यह अमर्यादा, बहुत अधिक खराब है। कपड़े की गठरी के समान नारियों को क्या भेजना होगा ? उनको अवश्य ही दबाकर रखना नहीं चलेगा। का एकाधिपत्य रहना भी उचित नहीं है। समाज में दोनों के सामवायिक नेतृत्व रहता उचित है। कोई किसी के अधीन नहीं है। इसलिये नारी-पुरुष के पारस्परिक सहमति के माध्यम से ही यौथ नेतृत्व का गठन करना उचित है। रेनाँसाँ आन्दोलन के पथिक लोगों को अविलम्व ही इन सब वैषम्य के विरुद्ध आन्दोलन शुरू करना होगा। ऐसा नहीं होने से, समस्त जन-गोष्ठी के अर्धांश, ये नारियाँ यदि अवहेलित रह गयीं, तब किस तरह मानव समाज को सर्वात्मक प्रगति होगी ? सुतरां, पुन-र्जागरण आन्दोलन में, यह सब देखना, विचार करना, एक सामाजिक कत्र्तव्य है, एक सामाजिक दायित्व है। रेनेसाँ के कार्यकर्ताओं को इन सब व्यवधान और

असाम्य के विरुद्ध संग्राम शुरू करना होगा- इन सबों को समाज से बाहर फेंक डालना होगा।

राजनैतिक क्षेत्र में क्या होता है? एक ही देश की एक जन-गोष्ठी, दूसरी जन-गोष्ठी का, अथवा एक देश, अन्य देश का शोषण करता चलता है। वहाँ भी है राजनैतिक असाम्य। समाज में अभी भी, अर्थनैतिक विभाजन, अर्थ नैतिक शोषण रह गया है। सिर्फ यही नहीं, सामाजिक और सांस्कृतिक वैषम्य, सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण भी रह गया है। रेनासाँ के कार्यकत्ताओं को, यह सत्य, आज सबके सामने लाकर रखना होगा। क्योंकि, इस वैषम्य को कभी भी सत् और शुभबुद्धि सम्पन्न लोग, समर्थन नहीं करेंगे, हमलोग भी नहीं करेंगे।

हाँ राजनैतिक क्षेत्र में अवश्य ही नीतिवादियों का शासन रहेगा। दुर्नीतिग्रस्त लोग कभी भी समाज को सही रास्तेपर नहीं चला

सकेंगे। कभी भी मनुष्य को कल्याण के पथ से नहीं ले जा सकते हैं। राजनैतिक जीवन को अवश्य ही विश्वकतावाद की भित्तिपर गठित करना होगा। साथ साथ यह भी नहीं भूलना होगा कि उस जगत के विशेष विशेष अञ्चल में, विशेष विशेष परिस्थिति और समस्यायें हैं।

अर्थ नैतिक क्षेत्र की बात ली जाय। यहाँ भी चरम असाम्य और शोषणा रह गया है। अवश्य आजकल प्रत्यक्ष भाव से औपनिवेशिक शासन नहीं है, किन्तु राजनैतिक और अर्थ नैतिक क्षेत्र में वह परोक्ष भावसे आज भी रह गया है। यह सब सह्य करना उचित नहीं है। पुनर्जागरण का आन्दोलन करने जानेपर इस विषय में भी कुछ करना होगा। तुमलोगों को यह याद रखना उचित है कि अयं नैतिक क्षेत्र में सबको न्यूनतम प्रयोजन पूत्ति की निश्चितता (गारन्टी) देनी होगी। इस विषय में सन्धि का प्रश्न ही नहीं उठता है। प्रत्येक को न्यूनतम क्रय क्षमता की निश्चितता देनी होगी। अभी भी

न्यूनतम प्रयोजन मनुष्य के जीवन में निश्चित नहीं है। बरन् आज भी मनुध्य, मार्क्सवाद के समान शठतापूर्ण पुराने अर्थ नैतिक तत्व द्वारा चालित हो रहा है- जो वास्तविक जीवन में व्यर्थ और असार कहकर प्रमाणित हुआ है। मनुष्य क्यों उस प्रकार के तत्व में विश्वास करेगा ? जो कभी भी सार्थक प्रमाणित हुआ नहीं ।

मनुष्य को गलत रास्ते पर चलाया जा रहा है कि नहीं, यह मूल्यांकण करके देखने का आज दिन आया है।

इसके बाद आती है एक गुरुत्वपूर्ण दिशा- वह है सांस्कृतिक जीवन । संस्कृति क्या है ? मानव जीवन की बहुमुखी अभिव्यक्ति का समाहार ही है संस्कृति । समग्र मानवजाति की संस्कृति एक है। तब, अभिव्यक्ति में आञ्चलिक तारतम्य तो रहता है। अभिव्यक्ति के इस आञ्चलिक तारतम्य का यह अर्थ नहीं है कि पृथिवी के

विभिन्न अञ्चल के मनुष्य की संस्कृति भिन्न भिन्न है- संस्कृति एक ही है-किन्तु अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न है।

शिक्षा, सांस्कृतिक जीवन का एक अङ्ग है। शिक्षा, अवश्य ही निःशुल्क होना उचित है और वह विश्वेकतावाद की भित्तिपर आधारित होना उचित है। शिक्षा के वास्तवायन के समय, तुमलोगों को अवश्य ध्यान देना उचित है कि समाज में अलग अलग अञ्चल की स्थानिक परिस्थिति, समस्या और स्थानिक प्रयोजन भिन्न भिन्न प्रकार का है। इसलिये शिक्षागत संरचना तैयार करने के समय, इस मौलिक तत्व को ध्यान में रखना होगा।

सुतरां, देखते हो, पुनर्जागरण आन्दोलन की परिधि विराट है। इसलिये तुम-लोगों को इसी मुहुत्त से कार्य आरम्भ कर देना होगा। इसमें जानकर देरी करना चलेगा नहीं। जागतिक क्षेत्र में इस प्रकार की विभिन्न समस्यायें रह गयी हैं। मानसिक जगत में भी वैसे ही रह

गई है, नाना प्रकार की व्याधि। रेनाँसाँ के कार्यकर्ताओं को इस प्रकार के असाम्य तथा मनुष्य-सृष्ट कृत्रिम भेद-विभेद के विरुद्ध संग्राम चलाते जाना होगा। मानसिक जगत् में भी अवश्य ही प्रगति करनी होगी। मानसिक क्षेत्र में, जो अग्रगति है, उसे अबाध और निरङ्कुश होना होगा। मानसिक जगत में भी अनेक रोग रह गये हैं। तुमलोग देखोगे मानस-भौतिक जगत में अनेक मनुष्य भावजड़ता के द्वारा प्रेषित हो रहे हैं। नाना प्रकार को भावजड़ता, मनुष्य के मन में, जड़ जमाकर रखा है। मनुष्य कभी भी, सहज में इन मिथ्या भावना से मुक्त नहीं हो सकता। कारण है, छोटी उम्र से ही, उनके मन में इन सब की सूचिका प्रयोग की गई है। इसके फलस्वरूप एक मानव-समाज विभिन्न राष्ट्र में विभाजित हो गया है और एक ही राष्ट्र विभिन्न धर्म मत में विभक्त हो गया है, एक ही धर्ममत फिर विभिन्न जाति, उपजाति में विभक्त हो गया है कैसी असहनीय दुर्वस्था है।

कोई सोचता है, जिस कारण से वह विशेष गोष्ठीभुक्त है, इसलिये वें परमपुरुष के आशीर्वादधन्य संतान हैं, और अन्य सब अभिशप्त हैं। यह अत्यन्त निम्नमान की भावजड़ता है ! यह सब सुविधावादियों की सृष्टि है। रेनाँसी के कार्यकर्ताओं को इन समस्त भावजड़ता के विरुद्ध संग्राम करना होगा। और वह करना होगा अशेष भाव से। इसलिये हो सकता है उनको असंख्य बाधा सम्मुखीन होना पड़े, कटूक्ति सुनना पड़े। और लांछना-विडम्बना भोग करना पड़े, किन्तु फिर भी उन्हें निर्भय और अप्रतिहत गति से आगे बढ़ना होगा। भाव-जड़ता है मानस-भौतिक व्याधि।

इसके अलावे है भौत-मानसिक रोग-समूह। कोई कोई युक्ति दिखाते है कि परमपुरुष ने मनुष्य के आहार के लिये ही जीवजन्तुओं की सृष्टि की है। मैं एक आदमी को जानतः हूं', वह प्रायः बोलता था- यदि मनुष्य बकरे का मांस न खाय तो एक दिन पृथिवी बकरे से भर जायेगा। कोई कोई बोलता है- यदि मनुष्य मुर्गी

सूचीपत्र

का मांस न खाय तो सम्पूर्ण पृथ्वी उससे भर जायेगा। एक इं'च परिमित जगह नहीं रहेगी। इस दिशा में मेरा वक्तव्य है कि मनुष्य तो गीध नहीं खाता है, तो क्या विश्व गीध से भर गया है ? ये मनुष्य कितने मुर्ख हैं? मनुष्य, केचुआ नहीं खाता है, तो कोई बोल सकता है कि इस पृथ्वीपर केंचुओं की संख्या वृद्धि, मनुष्य के नियंत्रण के बाहर चला गया। बात यह है कि जो लोग लोभ से मुरगी खाते हैं, बकरे खाते हैं, और अपनी दुर्बलता ढकने के लिये युक्ति खोजते फिरते है। तुमलोग इस तरह की कपटता को प्रश्रय नहीं दोगे। मानसिक जगत् की चलमानता के कारण से कुछ त्रुटिपूर्ण चिन्तन रह गया है। मनुष्य समझता है कि जैसे उसने पृथ्विी पर शासन करने के लिये जन्म लिया है और सृष्ट जगत के जीवजन्तुने सब जैसे उसके द्वारा शासित होने के लिये ही जन्म लिया है। मजबूत अस्त्र के द्वारा तुमलोगों की इस प्रकार की मानसिकता के विरुद्ध संग्राम करना होगा। यह अस्त्र क्या है? वह है नव्यमानवतावाद। यहाँ वास करने के लिये सबों का समान अधिकार है- यह विश्व सब के लिये

है। यह विश्व केवल मनुष्य की पैतृक सम्पत्ति नहीं है। यह रेनौसाँ के कार्यकर्ताओं का निश्चित कत्तव्य है। L

विशुद्ध मानसिक जगत में भी गति का प्रसंग आता है। सम्पूर्ण मानसिक स्तरों में भी अनेक त्रुटिपूर्ण चिन्तन कार्य करता है। इसके फलस्वरूप कोई व्यष्टि या गोष्ठी प्रायः दूसरे का दमन और उत्पीड़न करने की चेष्टा करती है। इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण मानसिकता के कारण जनगण का एक विराट भाग मानसिक हताशा भोग करता है।

पुनर्जागरण के आन्दोलनकारी लोगों को इस प्रकार के शोषण के विरुद्ध में तत्पर होना होगा और त्रुटिपूर्ण दर्शन के हाथ से, मानव समाज को बचाने के लिये रोगसमूहों को मनुष्य के मन से दूर करना होगा, साफ कर देना होगा ।

मानसाध्यात्मिक स्तर में भी और एक प्रकार की मानसिक व्याधि रह सकती है। मानसाध्यात्मिक स्तर की गतिकेन्द्रित है, अर्थात् समस्त रोग एक विशेष विन्दु से नियत्रित होते हैं और वह चरम सत्ता की ओर बढ़ चलता है। यह गति अवश्य संश्लेषणात्मक है-विश्लेषणात्मक नहीं है। सम्पूर्ण रूप से यदि गति वाह्यिक हो, तव पथ विश्लेषणात्मक होता है- जो बहुत ही भयावह है। इस कारण से देखा जाता है मानसाध्यात्मिकता के नाम पर मजहब या उपधर्म (रेलिजन) के नाम पर, मानव समाज में असाम्य तैयार हुआ है। मनुष्य मनुष्य में भेद सृष्ट हुआ है। अतीत में धर्म के नाम पर अनेक रक्तक्षयी संग्राम हुआ है। आजकल भी एक उपधर्म का मनुष्य दूसरे उपधर्म के मनुष्य पर विश्वास नहीं करते हैं। उनके ऊपर निर्भर नहीं कर सकते । इसलिये यह ध्यान देने की बात है कि एकमात्र केन्द्रित सत्ता, वही चरम सत्ता ही हमलोगों के रक्षक हैं। वे ही हमलोगों के जीवन के चरम लक्ष्य है। यही सभी तरह के मानसिक रागों का मकरध्वज है।

तृतीय है आध्यात्मिक स्तर। इस स्तर का स्वाभाविक पथ है, सब कुछ को आध्यात्मिकता की ओर चालित कर देना। आदर्श के क्षेत्र में, कर्म के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में, भाषा के क्षेत्र में, एकता के क्षेत्र में, सर्वत्र ही इसका उत्तरण होना आवश्यक है। अर्थात हमलोगों के आध्यात्मिक जीवन के समस्त स्तर में, इसका उत्तरण करना ही होगा। तुमलोगों के अस्तित्व के प्रत्येक अणु-परमाणु को आध्यात्मिकता में रूपान्तरित करना होगा। किन्तु त्रुटिपूर्ण दर्शन के कारण, त्रुटिपूर्ण निदर्शन के कारण, इस सत्य को मनुष्य भूल कर, आत्मिक शक्ति को मानसिक शक्ति में, और मानसिक शक्ति को जड़ शक्ति में रूपान्तरित करता चला है। उसने ऋणात्मक प्रतिसञ्चर का पथ चुन लिया है या वह प्रगति का परिपन्थी है ?

रेनासाँ के कार्यकत्ताओं का इस सब के विरुद्ध आवाज उठाना होगा, और वह करना होगा अभी ही, इस मुहुत्त से ही। मैं भी

चाहता हूँ, तुम सब लोग विचार वृद्धि सथित पुनर्जागरण के पथ से आगे बढ़ चलो - आज से ही, इसी मुहुत्त से ही। तुमलोगा की जय हो।

आर० इयु० प्रवचन, २रा जनवरी, १९८६।

प्रमा- १

"त्रिगुणात्मिका सृष्टि मातृका अशोष त्रिकोणधारा"

परमपुरुष की सत्व, रज व तमः विभिन्न धाराओं में अजस्र रेखाकार तरगें बहती चल रही हैं। सत्व, रजः और तम ये

त्रिगुणात्मक तरंग धाराए मिलित होकर त्रिकोण या उनसे अधिक कोणात्मक विभिन्न यन्त्रों की सृष्टि करती चल रही हैं। बहुभुज यन्त्र भी स्वरूप परिमाण के फलस्वरूप क्रमशः त्रिभुज में रूपान्तरित होता हैं। इस में त्रिगुणात्मिका मातृकाशक्ति (Vitum Matrik) अशेष है ।

यह गुण त्रिकोण या गुण यन्त्र जब तक साम्यावस्था बनाए रखता है, तब तक सत्व रज में रजः तमः में और तमः रजः में सीमाहीन रूप में रूपान्तरित होते चलते हैं। इस स्वरूप परिणामात्मक रूपतरंग के लिए ही गुण यन्त्रक का भारसाम्य बना रहता है। परन्तु इस अविराम रूपान्तरण की धारा में एक ऐसी अवस्था आती है जब प्रकृति प्रभाव निबन्धन गुण यन्त्रक का सन्तुलन टूट जाता है। किसी एक कौणिक विन्दु से सर्जन धारा का उत्सारण शुरू हो जाता है- विसृष्टि की धारा में क्रम विवर्तन का रास्ता पकड़ कर लोक-त्रिकोण तैयार होता है।

जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जैवीसत्ता त्रिभौमिक है। इन तानों को ले कर तैयार होता है सत्ता का प्रमा-त्रिकोण या लोक-त्रिकोण।

अब यह देखना है कि 'प्रमा' से हम क्या समझते हैं? प्रमा शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ है प्र-मा+ड + टा = प्रमा। 'मा' धातु का अर्थ है मापना या परिमाप करना। इस कारण प्रमा शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ है भारसाम्य। अंग्रेजी में इस अर्थ में (equilibrium) या (equipoise) दो शब्दों का व्यवहार किया जाता है। पर इन दोनों में कुछ अर्थ में व्यवहारिक पार्थक्य है। equilibrium है शक्तिगत भारसाम्य और equipoise है वजनगत भारसाम्य। मान लो, दो पक्षों में रस्सी की खींचातानी है। प्रतियोगिता चल रही है। दोनों पक्षों के ही समशक्ति सम्पन्न होने पर एक पक्ष दूसरे पक्ष को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाता है। अर्थात् दोनों पक्षों के मध्य एक

शक्तिगत भारसाम्य (equilibrium) बना रह जाता है। मानो तराज के एक तरफ है १ किलो वजन का एक बटखरा और दूसरी ओर १ किलो बैंगन है। इस क्षेत्र में वजनगत समता के रहने के कारण तराज़ू के दोनों पलड़े एक सन्तुलित अवस्था में हैं। इस वजनगत सन्तुलित अवस्था को भारसाम्य कह कर पुकारूंगा। वजनगत भारसाम्य और शक्तिगत भारसाम्य की मिलित फलश्रुति है 'प्रमा' ।

प्रमा की अपरिहार्यता व्यष्टि जीवन में जितनी सत्य है सामूहिक जीवन में भी उतनी ही सत्य है। किसी एक जनगोष्ठी के समाज, सभ्यता, संस्कृति या श्रेष्ठत्व या उत्कर्ष का निर्धारण उसके सामूहिक और व्यष्टिगत जीवन में प्रमासीनता किस परिमाण में अपनी भित्ति पर प्रतिष्ठित हो सकी है। हैरानी की बात तो यह है कि पृथ्वी नामक इस ग्रह पर १० लाख वर्ष पूर्व मनुष्य जाति का आगमन हुआ परन्तु सुदीर्घ पथ की परिक्रमा करने के मध्य चलते चलते आज से १५००० वर्ष पूर्व आधुनिक सभ्यता का आरम्भ

हुआ, परन्तु मनुष्य अपने सामाजिक और व्यष्टिगत जीवन में त्रिभौमिक सन्तुलन अर्थात् प्रमा की प्रतिष्ठा नहीं कर पाया है। यहाँ तक कि इस दिशा में वह कोई सचेतन प्रयास कर सकने के प्रयोजन को भी महसूस नहीं कर पाया। जैसे पाश्चात्य जगत अनेक अङ्ग में वैषयिक उन्नति कर आंशिक तौर पर भौतिक क्षेत्र में प्रमा लाने की चेष्टा कर रहा है। परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रमा की प्रतिष्ठा करने की उनमें कोई चेष्टा नहीं थी और आज भी नहीं है। पर हाँ, मानसिक क्षेत्र में मानव मनीषा के बहुविध विकास कर 'प्रमा' लाने की चेष्टा वे करते रहे। पृथ्वी में एक मात्र भारतवर्ष ही आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रमा प्रतिष्ठा के लिए बहुत चेष्टारत रहा, पर वह भी उन्नति की पराकाष्ठा तक नहीं पहुंच पाया। पाश्चात्क की तरह भारतवर्ष में भी मानसिक क्षेत्र में प्रमा की प्रतिष्ठा करने की बहुत चेष्टा की गई थी, परन्तु वह चेष्टा उल्लेख योग्य साफल्य तक पहुंचने में सम्भव नहीं हो पायी। पृथ्वी की विभिन्न जनगोष्ठियों का इतिहास जानने पर देखा जाता है कि सब में शारीरिक, मानसिक और

आध्यात्मिक सम्भावना होने पर भी उनकी प्रचलित भ्रान्त जीवनधारा, भावजड़ता, भ्रान्तध्यान धारणा, सामाजिक और अर्थ नैतिक त्रुटिपूर्ण अव्यवस्था 'आदि' के फलस्वरूप उनके वैयष्टिक और सामूहिक जीवन में प्रमा की प्रतिष्टा करने की उपयोगिता भी समझी नहीं गई। मानव समाज को ज्ञान-विज्ञान सभ्यता संस्कृति मन-मनीषा, वोधि और अनेक अमूल्य सम्पदाओं इत्यादि के क्षेत्र में, जो कुछ दे सकता था नहीं दे पाया, क्योंकि प्रमा के प्रसार का अभाव होने के कारण नहीं दे पाया।

भौतिक क्षेत्र में प्रमा का अभाव :

प्रकृति ने अकृपण हाथों से पृथ्वी के हर-अञ्चल को धरती के अन्दर सम्पदा और धरती के ऊपर भी सम्पदा से भर दिया। बनज, कृषिज, खनिज, जलज, भेषज आदि सम्पदा से हमारी पृथ्वी के विभिन्न अञ्चल भी भरे पड़े हैं। फिर भी अनेक देशों की अर्थ

नैतिक दिशा में चरम दारिद्र्य, जीवन यात्रा का स्तर निम्न है और शिल्प तथा कृषि आदि में अनग्रसरता है। जिसकी वजह से अन्नाभाव, वस्त्राभाव, निरक्षरता, विकित्सा का अभाव और गृहहीन जीवन का अभिशाप लिए, इस विशशती की इस जययात्रा के युग में करोड़ों मनुष्य अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संग्रामरत हैं। प्रकृति की असीम कुरा किसी भी अर्थ नैतिक अञ्चल में सम्पदा को कम नहीं करती, परन्तु शुभ हितैषियों के अभाव में ही सामाजिक और अर्थ नैतिक कार्यों में उन सम्पदाओं का उपयोग नहीं किया गया। इस कारण भौतिक जगत में मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएं (अन्न, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा और वासस्थान) पूरी नहीं की जा सकीं। इस अनिवार्य कारण से ही भौतिक स्तर पर प्रमा का अभाव व्यापक रूप में दिखाई देता है।

मानव सभ्यता के आदि विन्दु राढ़ की हो बात सोची जाय। इस अति प्राचीन भूमि अञ्वलपर प्रकृति ने अपनी सम्पदा के भण्डार

को बिखेर दिया था। राढ़ को प्राचीन शिलाओं के स्तरों के नीचे सोना, चांदी, ताँबा, पारा, अभ्रक, मैंगनीज आदि द्रव्य ढके पड़े हैं; उसकी आग्नेय शिलाओं की कठिन शैया के नीचे सोये हैं कोयार्ज एवं अन्य बहुमूल्य पत्थर। राढ़ में प्राचीन पाललिक शिलास्तर और मृत प्रस्तरों के भीतर भीतर भी उन्नत कोटि का कोयला और बालू मिलता है। इसी कारण पश्चिमो राढ़ असीम खनिज सम्पदा से पूर्ण रत्नगर्भा है। पूर्वी राढ़ का भूमिखण्ड तुलना में नई मिट्टी से बना है; क्योंकि यह अञ्चल समुद्र से निकला है। पर वहाँ भी अतीत काल में जिस स्थान पर 'सारगामो' समुद्र था वहाँ खनिज तेल पाये जाने की बहुत सम्भावना है।

पश्चिमी राढ़ जिस तरह से मिट्टी के नीचे समृद्ध है उसी तरह मिट्टी के ऊपर भी है। सारी पृथ्वीपर हवड़ा, पूर्व मिदनापुर कान्दी महकमा की तरह उर्वरभूमि विरले है। इनके कारण हैं वर्धमान, हुगली, सुवर्णरेखा, वक्रेश्वर, कोपाइ, शिलावती, दामोदर, अजय,

सूचीपत्र

मयूराक्षी, कंसावती, हिग्ला आदि राढ़ीय नदियाँ, जो कैलसियम और दूसरी खनिज सम्पदा से समृद्ध पोली मिट्टी ले कर आती हैं और इस विस्तृत अञ्चल की मिट्टी के ऊपरी भाग को बहुत उर्वर बनाती हैं। यहाँ की मिट्टी को बना दिया है सोने की मिट्टी। इस उर्वर भूमि पर धान, गेहूं, ईख, दाल, कपास, तूत रेशम आदि अनेक कृषि वस्तुओं के उत्पादन की सम्भावना है। राढ़ की लाल मिट्टी के ऊपर अच्छी जाति के सेव, नासपाती, संतरे, पपीता, अमरूद अंगूर, शरीफा आदि फल सकते हैं। विभिन्न प्रकार की सिचाई व्यवस्था (छोटी नदियों द्वारा सिचाई, भील द्वारा सिचाई, ऊपरी सिचाई) का प्रवर्तन करके उद्यान शिल्प (orchard और वर्ष में तीन बार वान की (आउस, आमन और बोरो) की खेती की जा सकती है। कृषि सम्पदा की भित्ति पर राढ़ में हजारों हजार कृषि भित्तिक और कृषि सहायक शिल्पों का विकास हो सकता था। परन्तु आज तक इन सब को समृद्ध करने के लिए किसी प्रकार का कार्य नहीं हुआ।

वन सम्पदा से समृद्ध राढ़ के अरण्यशाल, पियाशाल, हिजल, पलाश, अशोक, कुसुम, जामुन, कटहल, आदि के पेड़ों से भरे पड़े हैं।

राढ़ के विभिन्न प्रकार की सम्पदा के भण्डार रहने पर भी राढ़ के मनुष्य आज आयः अन्नहीन, अर्थ होन, नंगे, गृहहीन, बीमारियों से जीर्ण शीर्ण और शिक्षा के अभाव के कारण अज्ञानी और अनग्रसर हैं। यदि राष्ट्रीय अर्थनैतिक परिकल्पना, त्रमा तत्व पर आधारित होती तो राढ़ की सामाजिक और अर्थनैतिक पटभूमि एक पूर्णतः दूसरा ही रूप लिए होती।

इसी प्रकार एक और पास की भूमि उड़ीसा भी प्राकृतिक सम्पदा से समृद्ध बौर उज्ज्वल सम्भावनामय है। राढ़ की तरह ही विविध कृषिज, बनज और खनिज सम्पदा से समृद्ध उड़ीसा में अर्थनैतिक विकास की सम्भावना बहुत ही अधिक है। इसके

विस्तृत समुद्र उपकूल भाग में नाना प्रकार के शिल्प-कारखानों के विकास होने का बहुत बड़ा सुयोग है। लौह और इस्पात शिल्प, बन्दर-शिल्प, जहाज निर्माण कारखाना, समुद्रतरंग से उत्पन्न विद्युत शक्ति, (tidal-electricity) के उत्पादन की बहुत अधिक सम्भावना है। इसके अलावा कृषि सम्पदा को भित्ति बना कर उड़ीसा में हजारों हजार कृषि भित्तिक और कृषि सहायक शिल्प-उद्योग का विकास हो सकता है। परन्तु इस अञ्चल में भी प्रमा भित्तिक अर्थनैतिक और सामाजिक परि-कल्पनाओं के अभाव के कारण आज उड़ीसा के करोड़ों लोग चरम दारिद्र्य के मध्य जीवन यापन कर रहे हैं।

केवल राढ़ या उड़ीसा की बात क्यों लू? प्रमा के अभाव में आज पृथ्वी के प्रायः सब देशों में ही अर्थनैतिक विपर्यय का भयावह चित्र नजर आ रहा है।

आनसिक स्तर पर प्रमा का अभाव :

मानव मन के दो प्रधान कार्य हैं- चिन्तन करना और याद रखना। मनुष्य अन प्रधान जीव है। इस कारण मनुष्य का गौरव और श्रेष्ठत्व उसकी मननशीलता, बौद्धिक तीक्ष्णता और वैदूष्य की दीप्तिमयता में है। इसकी सर्जन-प्रतिमा के अभिस्फुरण से मानसिक जगत की सुन्दर भावसम्पदा, रंगतूलिका की रेखाओं द्वारा सुन्दर चित्रपट पर लेखिनी के स्पर्श से कविता साहित्य में है, छेनी हथौड़ी के द्वारा भास्कर्य की सुन्दरता में है। उसके दर्शन की चिन्ता-भावना, विज्ञान का विचारवीक्षण, विभिन्न शास्त्रों की परीक्षा-निरीक्षा मानव मन के चेतनापूर्ण अधिक्षेत्र में तथा मानसिक स्तर की सुनहो फसल बन वह मानव समाज में समाहृत होता है। परन्तु यदि आनसिक स्तर पर प्रमा का अभाव हो जाय तो मानस-भावों की अभिव्यक्ति से जन्मे साहित्य-भास्कर्य शास्त्र और ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखा प्रशाखाओं में भूल-आन्ति आ सकती है। इस से

नृत्य में छन्द पतन हो सकता है। चित्राङ्कन में परिमिक्ति बोध का अभाव हो सकता है, संगीत में सुर-लय-ताल में रसभंग हो सकता है, संगीत में साहित्य की शाखा प्रशाखाओं में अनेक प्रकार से भावहीन व रसहीन साहित्य की सृष्टि हो सकती है।

कोई चित्रकार एक तस्वीर बना रहे हैं। एक छोटा सा जलाशय उसमें तरंगों में प्रशान्ति है। जलाशय में एक जलपद्म खिला हुआ है। तस्वीर में अंकित जलाशय में हो सकता है एक वर्ग इ ंच जगह घेरी हुई है। और प्रस्फुटित पद्म का आयतन क्षेत्र उस तस्वीर में दो इंच का है। यहाँ पर चित्रकार तस्वीर की मौलिक परिमिति को खो बैठा है और प्रमा की शैल्पिक सन्तुलन को बिगाड़ दिया है। प्रमा के अभाव में वह तस्वीर सार्थक सूक्ष्म और सुन्दर नहीं बन पड़ी।

कविता के विषय में ही विचारा जाय। सार्थक कविता, भाव-भाषा छन्द और रस का सुन्दर समन्वय होती है। परन्तु कविता में यदि भाषा का मुशियाना हो या भावों की गंभीरता भरी पड़ी हो परन्तु छ'दों की पटुता या रस का अभाव हो तो कविता में प्रमा का अभाव हो जायगा और ऐसी कविता कभी भी उत्कृष्ट कोटि की सार्थकता का गौरव लाभ नहीं कर पाएगी।

इसी तरह भाव-भाषा-सुर-छन्दों के धार्मिक एकतान में ही गीत का अभिप्रकाश होता है। इनमें से किसी एक का अभाव होने पर गीतिमाधुर्य में प्रमा का अभाव दिखाई देगा। और ऐसी दशा में गीत केवलमात्र कुछ शब्दों का प्राणहीन पंक्तिबद्ध रूप ही रह जायगा।

सुदूर अतीत में मानव समाज में दार्शनिकता का सूत्रपात, सृष्टि के मूल रहस्य को जानने और समझने के लिए हुआ था। ज्ञान भूमि को इस साधना से मानव मनीषा के नाना युग में नाना प्रकार के

भावों को ग्रहण कर के विभिन्न दार्शनिक विचार तैयार हुए। उनमें से कोई दर्शनिक भाववादी है, कोई जड़वादी है। पर दर्शन का मूल लक्ष्य क्या है ? स्रष्टा और सृष्टि के मध्य योगसूत्र का शुद्ध रूप में। निर्णय करना ही दर्शन का मूल लक्ष्य है; परन्तु दार्शनिकगण आन्तरिक प्रयास कर के भी आपेक्षिक जगत के साथ परमाथिक जगत में सेतुबन्ध रचना कर नहीं पाए दर्शन मानो अधिविद्या (metaphysies) के गोरख धंधे में फंसकर पथ भ्रष्ट हो गए हैं। दर्शन के भ्रान्त सिद्धान्तों को भाव-जड़ताश्रयी बौद्धिक जंजाल में परिवर्तन करू दिया गया है। शिव ने उनके सम्बन्ध में ही कहा था- 'लोकव्यामोहका रक'

अध्यात्मिक क्षेत्र में प्रमा का अभाव :

आध्यात्मिकता का मूल लक्ष्य है मानव अस्तित्व के अभ्यन्तर में जो शिव खुरे हैं उन्हें प्राप्त करना, भूमा के साथ अणु का शिव के

साथ जीव का परमात्मा के साथ जीवात्मा का महामिलन करना। आध्यात्मिकता के इस मूल गूढ़ रहस्य को नहीं पहचान कर मनुष्य उपधर्म (religion) से प्रभावित हो कर दूर दूर देशों में तीर्थाटन करने के लिए निकल पड़ता है- यहाँ तक कि घर-द्वार जमीन तथा जमा वस्तुए सब वेच कर वह तीर्थस्थान के लिए जाता है। यह कह सकते हैं कि इन सब से केवल श्रम, समय और धन का ही अपचय नहीं होता, बल्कि क्लेश भी बढ़ता है; परन्तु किसी प्रकार का आध्यात्मिक लाभ नहीं होता। आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रमाहीनता का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

प्रमा-संवृद्धि, प्रमा ऋद्धि और प्रमा सिद्धि

यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि मानव अस्तित्व के तीनों स्तरों पर प्रमा का प्राधान्य अपरिसीम है। मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए जागतिक उन्नति भी

घने तौर पर जुड़ी है। जागतिक विकास की सन्तुलित अवस्था चरम उत्कर्ष पर पहुंच कर जब व्यष्टि और समष्टि, मानस और आध्यात्मिक विकास के साथ सामंजस्य की रक्षा करता है, तब उसे प्रमा-संवृद्धि कहूंगा।

इसी तरह प्रमा-वृद्धि का अर्थ है जहाँ म.नसिक विकास में सन्तुलन की अवस्था चरम उत्कर्ष पर पहुंच कर, व्यष्टि और समष्टि के जागतिक और आध्यात्मिक विकास के साथ सामंजस्य की रक्षा करता है, यही है प्रमा-ऋद्धि। इस दशा में मन की चित्त धातु (ectoplasmic stuff) चूर्ण-विचूर्ण होकर केवल आयतनगत और भावगत रूप में वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, वित्ताणु कुशाग्र तीक्ष्णता प्राप्ति के प्रयास में अग्रबुद्धि के शीर्ष विन्दु की ओर मानसिक भारसाम्य को बनाए रख कर आगे बढ़ते है।

प्रमा सिद्धि उसे ही कहूँ गा जहाँ मानसाध्यात्मिक स्तर उत्क्रान्त होकर मानव मन विकास की परम साम्यावस्था तथा चरम उत्कर्ष पर पहुंच जाता है, और व्यष्टि और समष्टि के जागतिक और मानसिक विकास के साथ सामंजस्य भी बनाए रखता है।

लोक त्रिकोण और विक्रान्त-विकृत-विपर्यस्त अवस्था :

जागतिक मानसिक आध्यात्मिक- तीन स्तरों को लेकर ही व्यष्टि या समष्टि सत्ता का लोक त्रिकोण या प्रमात्रिकोण तैयार होता है। विवर्तन की धारा में परम तत्व के मूल कोरक से विकसित इस विसृष्टि के प्रथम चरण में लोक-त्रिकोण आता है। प्राथमिक अवस्था में व्यष्टि सत्ता के लोक कोण में सामरस्य या सामञ्जस्य बनाए रहने पर भी परवर्ती स्तर देश-काल-पात्र के प्रभाव से और वृत्ति के संघात से लोक त्रिकोण का सामरस्य नष्ट हो जाता है। अर्थात प्रमात्रिकोण में साम जस्य भी विनष्ट हो जाता है। लोक-

त्रिकोण या प्रमा-त्रिकोण के इस सामरस्यविहीन अवस्था को विक्रान्त अवस्था (stage of derangement) कहते हैं। इस अवस्था में योथ प्रचेष्टा के द्वारा हृत प्रमा का यदि पुनरुद्धार किया जा सके, तो अच्छा ही है, नहीं तो इस अधोगति की धारा में लोक त्रिकोण विक्रान्त होने पर, विकृत अवस्था पर उतर आता है (stage of distruption) निम्नमुखी इस गति को यदि मनुष्य प्रतिरोध या संशोधन करने में असमर्थ हो तो इसके बाद वाले स्तर पर लोक त्रिकोण विपर्यय की दशा तक पहुँच जाता है (stage of degeneration) आज का मनुष्य इसी दशा को पहुंच चुका है। इसके कारण आज मानव समाज अर्थ नैतिक दिवालिएयन, साम जिक अस्थिरता, सांस्कृतिक अवक्षय और धार्मिक कुसंस्कार के भयावह आवर्त में गिर कर दिग्भ्रान्त होता जा रहा है।

समाधान :

जब समाज इस विपर्यय की दशा को पहुंच जायेगा तब उसके लोक त्रिकोण के सामरस्य को प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकेगा। बल्कि समाज को, हर चरण में 'विपर्यय' को अवस्था से, विकृत 'अवस्था और उसके बाद 'विकृत' अवस्था से 'विक्रान्त' अवस्था में उन्नीत किया जायेगा, और चरम स्तर पर लोक-त्रिकोण और प्रमा-त्रिकोण में सामरस्य को प्रतिष्ठित करना पड़ेगा। चाहे जागतिक, मानसिक और आध्यात्मिक -तीनों स्तरों का अपना अपना महत्व है, फिर भी हमें भौतिक स्तर को प्रारम्भिक पर्याय में विशेष प्रधानता देनी होगी। भौतिक स्तर पर प्रमा के नष्ट हो जाने पर समाज मैं कौस्थितिकों का आधिपत्य हो जाता है। तब कौस्थितिक समाज देह को कलुषित कर देते हैं। फलस्वरूप, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर पर भी प्रमा विनष्ट हो जाती है। मानसिक अवस्था हर क्षेत्र में क्रमशः अधोगति की और अग्रसर होती रहती है। इस कारण भौतिक क्षेत्र में लोक-त्रिकोण तथा प्रमात्रिकोण की प्रतिष्ठा करना प्रारम्भिक कत्त व्य हो जाता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि लोकत्रिकोण तथा प्रमा त्रिकोण को सामरस्य को ओर लोटाया जा सकता है कि नहीं? हर एक मुख्य स्तर को कुछ उपस्तरों में बाँटना होगा जैसे भोतिक स्तर को हम कृषि, शिल्प, व्यसाय-वाणिज्य, चिकित्सा, दैहिक प्रशिक्षण इत्यादि में बाँट सकते है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भौतिक विज्ञान की समस्त शाखाएं आ जाती हैं; क्योंकि वह सब जड़ जगत के साथ जुड़ी हैं। पक्षान्तर से समस्त हयूमेनिटीज सबजेक्ट ही (जैसे भाषा-साहित्य, इतिहास, दर्शन इत्यादि) मानसिक स्तर पर आते हैं। हर उपस्तर के उरत्रिकोण बना कर उनमें स्तर पर सामरस्य की मात्रावृद्धि कर के क्रमशः भौतिक स्तर को विपर्ययस्त अवस्था से विकृत अवस्था पर उन्नीत करना होगा और परवर्ती चरण में उपत्रिकोणों के मध्य सामरस्य की मात्रा और भी बढ़ा कर भौतिक स्तर की विकृत अवस्था से विक्रान्त अवस्था में लाना होगा। इस प्रकार भौतिक

स्तर के लोक-त्रिकोण तथा प्रमः-त्रिकोण में पूर्ण सामरस्य तभी प्रतिष्ठित होगा जब उससे संश्लि ट अनेक उपत्रिकोणों में भो सामरस्थ ठीक प्रकार से प्रतिष्ठित हो सके।

इसी तरह मानस स्तर पर भी अनेक उपस्तर हैं। जैसे शरीर-मानसिक, विशुद्ध मानसिक, तथा मानस आध्यात्मिक उपस्तर है। मानस स्तर के इन उपस्तरों के बीच भी स्तर में सामरस्य की मात्रा को बढ़ा कर मानस-स्तर को विपर्यय की दशा से विक्रान्त दशा में और अन्त में मानस स्तर की स्वाभाविक लोक त्रिकोण और प्रमा-त्रिकोण में लौटा लाना होगा।

अब आध्यात्मिक प्रसंग पर आया जाय। इस आध्यात्मिक स्तर को भी सम्भव

रूप में कुछ उपस्तरों में बाँटा जा सकता है, चाहे स्वाभाविक रूप में इन उपस्तरों की संख्या बहुत कम होगी। इन आध्यात्मिक स्तरों में उप-त्रिकोणों में भिन्न स्तरों पर सामरस्य की मात्रा को बढ़ा कर विपर्यययस्त अवस्था से विकृत और विकृत अवस्था से विक्रान्त और अन्त में आध्यात्मिक जगत में स्वाभाविक लोक त्रिकोण में सामरस्य को प्रतिष्ठित करना होगा।

भौतिक स्तर पर सामरस्यपूर्ण लोक-त्रिकोण तथा प्रमा त्रिकोण तैयार करने के लिए चार तत्वों की विवेचना करनी होगी।

(१) वर्तमान काल की भौतिक माँग और निकट भविष्य की भौतिक माँग।

(२) वर्तमान काल का भौतिक यीगदान और निकट भविध्य का भौतिक योगदान।

(३) भूनि का सर्वाधिक उपयोग ग्रहण।

(४) प्राउट के पाँच मौलिक सिद्धान्त को भित्ति पर स श्लिःट हर विषय की समस्या का समाधान।

जैसे, किसी विशेष अर्थनैतिक अंचल की खाद्य समस्या को दूर करने के लिए कृषि के उप-त्रिकोणों को प्रयोजनीय सिचाई की व्यवस्था को बना कर भूमि को उर्वर बनाना होगा, साथ ही अधिक फसलों के उत्पादन के लिए अच्छे बीजों की व्यवस्था करनी होगी और जमीन को उर्वर बनाने के लिए ट्रेक्टरों के प्रयोग के साथ हो अच्छी खाद का प्रयोग जरुरी है। और वर्ष में तीन या चार फसलों

की खेती की व्यवस्था करनी जरुरी हैं। साथ ही उपयुक्त जमीन के लिए उपयुक्त फसल का निर्वाचन, कृषि समवाय (agricultural co-operative) ओर कृषि उत्पादन समवाय (agricultural producers' co-operative) का निर्माण कर के कृषक ब्रिगेड को तैयार कर मुनाफा लूटने के उद्देश्य से नहीं प्रयोजन पूति की नीति को ध्यान में रख कृषि को परिचालित कर के और उत्पन्न फसल को यथानुरूप संरक्षित कर बाँटने की व्यवस्था करेगा। इससे सब व्यवस्थाओं के सम्मिलित सामरस्य से कृषि में जो सूक्ष्म लोकत्रिकोण और प्रमा त्रिकोण बनेगा वह मुख्य भौतिक स्तर के लोक त्रिकोण व प्रमा त्रिकोण के सामरस्य को लौटा लाने में सहायता करेगा।

इसी तरह से मानसिक स्तर पर भी लोक त्रिकोण व प्रमा त्रिकोण में सामरस्य को लौटा लाने के लिए उनके स श्लिष्ट उप-त्रिकोण में सुन्दर रूप में सामरस्य की प्रतिष्ठा करनी होगी।

भौतिक मानसिक और आध्यात्मिक स्तर के लोक त्रिकोण व प्रमा त्रिकोण मिलित हो कर जिस चरम लोक त्रिकोण व प्रमा त्रिकोण को तैयार करेंगे, उसका केन्द्रविन्दु परम गुण-त्रिकोण के केन्द्रविन्दु के साथ सुसामंजस्यपूर्ण सम्पर्क से सम्बन्धित होकर महाविश्व के साथ व्यष्टि, व्यष्टि के साथ समष्टि और समष्टि के साथ महाविश्व के एक परिपूर्ण सार्थक गतिशील सामरस्य प्रतिष्ठित करेंगे। सर्वस्तर का यह सामरस्य ही एक सन्तुलित प्रमासीनता को बनाएंगे। इस प्रमासीनता के अर्जन के बीच से मनुष्य भौतिक स्तर पर प्रमा स वृद्धि, मानसिक स्तर पर प्रमा ऋद्धि, और आध्यात्मिक स्तर पर प्रमा सिद्धि को, अर्जन करने में सक्षम हो सकेगा। इससे ही सब मनुष्यों की हर स्तर पर कल्याण, प्रगति और पूर्णता होगी।

प्रमा-४

परिशिष्टांश

प्रश्न १। मान लिया जाय किसी देश में खाद्यवस्तुओं और अन्यान्य प्रयोजनीय वस्तुओं की कमी नहीं है पर मनुष्य का मन किसी एक विशेष मतवाद से बंधा हैं-मानसिक चिन्ता की स्वाधीनता नहीं, उस देश में क्या भौतिक या मानसिक प्रमा-त्रिकोण रह सकेगा ?

उत्तर : नहीं, नहीं रह पाएगा। मान लो प्रकृति के अकृपण दान से या उस देश के निवासियों की कर्मदक्षता के फलस्वरूप, किसी देश में खाद्यशस्य या जीवन धारण करने की प्रयोजनीय सामग्री का अभाव नहीं, वरन् कह सकते हैं कि प्राचुयं ही है। फिर भी उस देश में जड़ प्रमात्रिकोण नहीं रह पाएगा, यदि उस देश के प्रतिवेशी देश में खाद्य का अभाव हो। उदाहरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि भारत के पंजाब और हरियाणा राज्यों में सम्पदा कुछ अधिक है। उड़ीसा, पूर्वी यू०पी० और बिहार बहुत ही गरीब राज्य हैं। इस कारण उन इलाकों में राजनीतिक शान्ति में विघ्न आ सकती है। रोशनी और अन्धेरा एक साथ नहीं रह सकते । अमरीका संयुक्त राज्य बहुत ही धनी है, इस कारण उस राज्य में जड़ प्रमा-त्रिकोण ठीक प्रकार से नहीं बन सकता है। अफ्रिका के सहारा मरुभूमि में दक्षिण देश बहुत अधिक दरिद्र हैं। इस कारण उस अंचल में जड़ प्रमात्रिकोण को बनाए रखना बड़ा हो कठिन कार्य है। भौतिक प्रमात्रिकोण को ठीक तरह से निर्मित करने के लिए पृथ्वी व्यापी

खाद्य और अन्यान्य प्रयोजनीय सामाग्रयों का वितरण होना चाहिए।

मानसिक दिशा में भी उसी तरह मानसिक प्रमा-त्रिकोण नही बन सकता, यदि मनुष्य के मन में स्वाधीन चिन्तन की सुविधा न हो। मनुष्य का मन मुक्त पक्षी-विहंग की तरह उड़ना चाहता है, भावराज्य की विशाल व्याप्ति में वह स्वयं को छोड़ देना चाहता है। इस कारण 'इज्म' वद्ध मनुष्य के समाज में मानसिक प्रमा-त्रिकोण को बना सकना सम्भव नहीं है।

प्रश्न २। ऐसे कई रोग हैं जिनकी उन्नति भौतिक क्षेत्र में है, परन्तु बाद में वह रोग मानसिक में परिणत होता है। यदि मनुष्य के सोचने में स्वाधीनता न रहे तो इस भौतमानसिक व्याधियों का पूर्णरूप से निरामय क्या सम्भव है ?

उत्तर : नहीं मनुष्य का मानस जगत् यदि सामंजस्य और भारसाम्य को खो बैठता है, तब भौतमानसिक व्याधियों का निरामय सम्भव नहीं हो सकता। प्रसंगतः यह उल्लेखनीय है कि माइक्रोवाइटम मानव सभाज में भौतमानसिक व्याधियों की सृष्टि कर सकता है। इस प्रकार के रोगों की उत्पत्ति देह में होती है, परन्तु कालक्रम में वह मन में भी फैल सकती है।

प्रश्न ३। मान लिया जाय कि किसी देश के रहनेवाले बहुत ही नीतिवादी हैं और वहाँ खाद्य तथा जीवन धारण तथा अन्य प्रयोजनीय सामग्रियों का भी अभाव नहीं है। उस देश के मनुष्यों में चिन्तन की स्वाधीनता भी है, भिन्न मतावलम्बी लेखकों की पुस्तकें पढ़ने और किसी दार्शनिक चर्चा के विषय में भी किसी प्रकार की बाधा भी नहीं। उस अवस्था में आध्यात्मिक प्रमात्रिकोण बनाया जा सकता है या नहीं ?

उत्तर : आध्यात्मिक प्रमा त्रिकोण तभी गढ़ा जा सकता है, जब देश में व्यापक तौर पर आध्यात्मिकता की चर्चा होती है। आध्यात्मिक साधना के लिए मनुष्य के मन में एक दृढ़ आध्यात्मिक एषणा को जगाए रखना होगा। इस कारण वहाँ उपयुक्त शिक्षा आध्यात्मिकता की भित्ति पर शिक्षा व्यवस्था को बनाना होगा। पाने पर मनुष्य के मन में आध्यात्मिक एषणा जगेगी, उनकी आध्यात्मिक साधना शुरू होगी। इस कारण पृथ्वी के विभिन्न देशों में जितने अधिक इस तरह के शिशुशिक्षा केन्द्र खोले जायें उतना हो अच्छा है। केवल नीतिवाद के प्रचार के द्वारा, खाद्योत्पादन के द्वारा तथा कुछ चिन्तन की स्वाधीनता के द्वारा पृथ्वी में कहीं भी आध्यात्मिक प्रमात्रिकोण नहीं बनाया जा सकता ।

प्रश्न ४। (क) मान लो कोई देश बहुत अधिक धनी है। क्या उस देश में मानसिक प्रमात्रिकोण या जड़ प्रमात्रिकोण बनाया जा सकेगा ?

उत्तर : स्वभावतः ही उस क्षेत्र में कोई भौतिक प्रमात्रिकोण या मानसिक प्रमात्रिकोण बनाया जा सकता है।

(ख) उस क्षेत्र में उस देश के पक्ष में क्या करणीय है? क्या वे पाश्वंवर्ती किसी देश पर आक्रमण कर जीवनधारण की आवश्यक वस्तुए संग्रह करेंगे ?

उत्तर : जब तक वह देश अपने यहाँ कृषिपण्य के उत्पादन में बढ़ोत्तरी नहीं करता तब तक उस देश में किसी प्रकार से भी प्रमात्रिकोण नहीं बन सकता है। अपने यहाँ खाद्यशस्य संग्रह की कमी के कारण पास के पड़ोसी देशों पर आक्रमण करते या आक्रमण करने की अभिसन्धि करके उस सारे इलाके में असन्तोष और अर्थ नैतिक अनिश्चितता की वृद्धि करते हैं- ऐसी दशा में किसी प्रकार से प्रमात्रिकोण नहीं बन सकता।

(ग) वाणिज्य के लेनदेन के माध्यम से क्या उपरोक्त समस्या का समाधान किया जा सकता है?

उत्तर : वाणिज्य के लेनदेन से कुछ दूर तक समस्या का समाधान किया जा सकता है। जैसे वंगला देश में उवृत्त कच्चा चमड़ा (hide) है पर वर्मा में इनकी कमी है। दोनों देशों में वाणिज्य में विनिमय चल सकता है।

प्रश्न ५ । (क) पृथ्वी पर प्रायः सब देश ही डागमा को भोग रहे हैं। चाहे उस देश में खाद्य सामग्री का अभाव नहीं है। क्या उस देश में प्रमात्रिकोण बन सकता है ?

उत्तर : नहीं कभी नहीं ।

(ख) मान लो किसी देश में चिन्तन की स्वाधीनता है, पर मनुष्य के मन में अनेक डाँगमा भरे पड़े हैं- उस समय क्या उपाय है ? डॉगमा को दूर करने का क्या उपाय है, कैसी पद्धति है ?

उत्तर : पृथ्वी पर प्रायः सब देश किसी न किसी डॉगमा को भोग रहे हैं। कोई उपधर्मी डॉगया, तो कोई राजनैतिक या अर्थनैतिक डॉगमा को भोग रहे हैं। समाजवाद, घनतन्त्र, सब में डागमा एक भूत की तरह मनुष्य के विचारों से जुड़े है।

तुम सब यह जानते हो कि अर्थनैतिक जगत में बैंकिंग प्रथा, सूद लेना, मुद्रा की चलमानता आदि अपरिहार्य है परन्तु मान लो किसी राजनैतिक या उपधर्मीय मतवाद ने इसका समर्थन नहीं किया। उस दशा में उस देश ने अर्थनैतिक क्षेत्र में धक्का खाया या नहीं ।

यह भी देखा जा सकता है कि रिलीजियन या मजहब मनुष्य को शिक्षा देते हैं- अहिंसा परमो धर्म, यदि कोई एक गाल पर थप्पर मारे जो दूसरा गाल आगे बढ़ा दो। यदि वह देश उसके विचार के अनुसार काम करना शुरू कर दे, तोप्रतिवेशी शत्रु राष्ट्र द्वारा आक्रमण होने पर उसे हाथ पर हाथ रखे बैठे रहना पड़ेगा। ऐसी दशा मेंकिसी प्रकार का प्रमात्रिकोण नहीं बन पाएगा ?

प्रश्न ६। (क) यदि किसी देश में भौतिक प्रमात्रिकोण, मानसिक प्रमात्रिकोण और आध्यात्मिक प्रमात्रिकोण तो बन जाय, परन्तु वे तीनों परस्पर नहीं मिल पाते-जो कि साधारण तौर पर आध्यात्मिक क्षेत्र में मिल जाते है। उस दशा में उस देश के सद्गुणों से पूर्ण लोग अराति माईक्रोवाइटम की ध्वंसात्मकशक्ति के विरूद्ध किस प्रकार लड़गे ?

उत्तर : यदि लाखों जड़ प्रमात्रिकोण, मानसिक प्रमात्रिकोण और आध्यात्मिक प्रमात्रिकोण किसी एक सामान्य या अभिन्न विन्दु पर न मिले तो उनमें परस्पर में खींचातानी होगी-वे विक्रान्त हो जाएगे विकृतावस्था को प्राप्स करेंगे। उनकी आभ्यन्तरोण प्रमा नष्ट हो जायगी । यदि प्रमात्रिकोण अभिन्न बिन्दु पर मिलते हैं तो शक्तित्रिकोण गुणत्रिकोण के दरवाजे पर आ पहुंचते हैं। यदि प्रमात्रिकोण विनष्ट हो जाता है, तो सत् लोग भिन्न माइक्रोवाइटम की सहायता लेंगे, कोई कोई माइक्रोवाइटम कार्यगत रूप में मनुष्य के मित्र हैं, कोई कोई कार्यगत रूप में शत्रु है। स्वभावगत रूप में कोई माइक्रोवाइटम मनुष्य के शत्रु या मित्र नहीं है।

न कश्चित् कस्यचित् मित्रम्

न कश्चित कस्यचित् रिपुः

व्यवहारेन मित्रानि जायन्ते रिपवस्तथा ॥

सूचीपत्र

सत् लोगों द्वारा नियन्त्रित होने पर कार्यगत रूप से शत्रु भावापन्न माईक्रोवाइटम भी मनुष्य के मित्र हो सकते हैं। जैसे विष मनुष्य के लिए प्राणघातक है पर वही मनुष्य के लिए प्राणदायक ओषधि भी है। सर्प विष लें एक सवंजन स्वीकृत ओषधि है।

प्रश्न ७ । मित्र माइक्रोवाइटमों को उत्साह दिलाने के लिए और अराति माइक्रोवाइटमों को कर्म तत्परता को प्रतिहत करने के लिए पृथ्वी के साथ सारे विश्व की शिक्षा व्यवस्था को क्या एक जैसा बनाना उचित है ।

उत्तर : माइक्रोवाइटम के कर्मक्षेत्र केवल भौतिक क्षेत्र नहीं है, मनोजगत भी नहीं, पर आध्यात्मिक जगत् उनके कर्म का अधिक्षेत्र नहीं। क्योंकि वे भूमा मानस के प्रतिसंचर धारा से बने हैं। इस कारण वे जीव की आध्यात्मिक संरचना को आहत नहीं कर पाते; परन्तु भौतिक और मानसिक आधार पर अवश्य हो आघात ला

सकते हैं। सब देशों की तथा सब ग्रहों की शिक्षा व्यवस्था को, यदि ठीक से तैयार किया जाय, तो मनुष्य की भौतिक, मानसिक, मानसाध्यात्मिक और आध्यात्मिक आधारों में मित्र माइक्रोवाइटम की सहायता मिल सकती है।

सर्वात्मक विमुक्ति की नव्य-नीति-चेतना

यह, जब तक वैज्ञानिकों की धारणा थी कि बङ्गाराणु या बङ्गार-परमाणु को मूल उपादान रूप में व्यवहार न करने से,

किसी सत्ता की संरचना तैयार नहीं हो सकती ; अर्थात अङ्गाराणु की सहायता के बिना किसी संरचना का अस्तित्व, संख्या वृद्धि तथा अवक्षय एकदम ही सम्भव नहीं है। इस अङ्गार या जो बङ्गार सञ्जात नहीं है। ऐसे सब कुछ (Carbon and non-Carbon) माइक्रोवाइटम से ही वे आनी अपनी पारमाणविक संरचना प्राप्त करते हैं। तात्विक दृष्टिकोण से माइक्रोवाइटम के स्थानिक आधार के प्रयोजन रहने परभी, वास्तव में उसकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु पारमाणविक संरचना का तात्विक और वास्तविक दोनों दिशाओं में स्थान का प्रयोजन है। माइक्रोवाइटम एकदम अङ्गार सञ्जात नहीं है।

अङ्गार-परमाणु की स'रचना की ही बात ली जाय। एक परमाणु के नियन्तृ-केन्द्र (nucleus) के चारों ओर विद्युताणुसमूह (electrons) घूमता रहता है। परमाणु जीवन उसके नियंत्रण केन्द्र के पिण्ड (mass) परिमाण द्वारा ही निर्दिष्ट होता है। दो परमाणु के

मध्य जो पार्थक्य होता है, वह प्रधानतः दो नियंत्रण-केन्द्र का ही पार्थक्य है। इस विषष में विद्युताणु के पिण्ड (mass) का विशेष कोई महत्व नहीं है। एक परमाणु के नियंत्रण केन्द्र को यदि तोड़ दिया जाय, तब विपुल परिमाण में शक्ति या ताप अवश्य ही निर्गत होगा।

यह सत्य है कि जीव कोष की संरचना अङ्गार-परमाणु के ऊपर निर्भरशील है। सिर्फ एक माइक्रोवाइटम को लेकर अङ्गाराणु तैयार नहीं होता है। कोटि कोटि माइक्रोवाइटम मिलित रूप में एक अङ्गाराणु सृष्ट करता है। साधारणतः या स्वभावतः एक परमाणु अ-समसत्व प्रकृति के और विशेष परिस्थिति में समसत्व प्रकृति के होते हैं।

एक परमाणु या बहुत परमाणु के सहयोग से तैयार होता है एक अणु और अनेक अणु समाहृत होकर मूल तत्व (element)

पर्यायभूक्त होता है। यह मूल-तत्व है- समसत्व प्रकृतिका, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन, हिलियाम प्रभृति- नहीं तो अ-समसत्व प्रकृति के जैसे- हाइड्रोजन-मोनोक्साइड, हाइड्रोजन पेरोक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, इत्यादि । एक परमाणु आभ्यन्तरिक दिशा में बहिरङ्ग की दिशा में भी समसत्व और अ-समसत्व दो प्रकार का हो सकता है। एक अणु के सम्बन्ध में वही एक ही बात होती है किन्तु आभ्यन्तरिक क्षेत्र में अधिक भाग अ-समसत्व प्रकृतिका होता है, और बहिरङ्ग की ओर समसत्व प्रकृति का होता है। अतः एक परमाणु अभ्यन्तरिक क्षेत्र में, परमाणु समसत्व या अ-समसत्व प्रकृतिका है कि नहीं? उसके अनुसार उसकी वैयष्टिक महिमा निर्धारित होती है।

हाइड्रोजन, सलफर और ओक्सिजन मिलकर बनता है - सलफरिक एसिड । सुनिदिष्ट तापमात्रा में, निर्दिष्ट चाप में, और निर्दिष्ट अनुपात में जब वे मिलते हैं, तब हमलोग सलफरिक एसिड

पाते हैं। यदि उपकरणों का थोड़ा भी तारतम्य हो जाय, तो फलाफल भी परिर्वात्तत हो जाते हैं।

अङ्गाराणु की सहायता के बिना जीवपङ्कीय संरचना ही तैयार नहीं हो पायेगा। जीवपङ्कीय कोषसमूह मूलतः अ-समसत्व प्रकृति के अणुपुञ्ज का समाहार मात्र है। यदि जीवपङ्कीय कोषसमूह के नियंत्रण केन्द्र, nucleus को विश्लिष्ट किया जाय, तब वे जो विपुल परिमाण में शक्ति विच्छुरित करते हैं, उसका परिमाण, पारमाणविक विस्फोरण की अपेक्षा अनेक गुणा अधिक होता है।

स्वभावतः जीव संरचना जो कोटि कोटि जीवपङ्कीय कोषों के समाहृत रूप हैं, उनमें इतनी विपुल परिमाण में शक्ति निहित रहती है, जो साधारण बुद्धि के अगम्य है।

कोटि कोटि माइक्रोवाइटम् मिलकर तैयार करता है मात्र एक अङ्गाराणु को। इसी कारण से कहा जाता है न, कि सब कुछ अङ्गाराणु सञ्जात है। वरन् यह बोलना संगत है कि अङ्गाराणु समूह आया है माइक्रोवाइटम् से। केनल अङ्गारण ही नहीं, अन्यान्य सभी अणुकणा ही माइक्रोव इटम् सञ्जात है। स्वभारतः रसायणशास्त्र, जैव रसायण (bio-chemistry) और जड़विज्ञान की अन्यान्य सभी शाखाओं में एक वैकल्पिक परिवर्तन संशाधित होगा। ऐसा एक दिन अवश्य आयेगा, जिस दिन गणितशास्त्र का एक 'ओमेगा' और जैव रसायण को एक 'ओमेगा' एक दूसरे का द्योतक रूप में चिह्नित होगा। वर्तमान प्रचलित यावतीय वैज्ञानिक सूत्र औरतत्व को नये ढंग से तैयार करना होगा। उनकी नयी संज्ञा निर्धारण करनी होगी और नये ढंग से श्रेणी विन्यास करना होगा।

जब एक परमाणु ही, साधारण अणुवीक्षण तथा दूरवीक्षण की परिधि में नहीं आता है, तब माइक्रोवाइटम् जो परमाणु की अपेक्षा

अजस्र गुणा सूक्ष्म और क्षुद्र है, वे किस तरह साधारण अणुवोक्षण या साधारण दूरवीक्षण के परिभू में आ सकता है या मानस स्तर में जैव इन्द्रियानुभूतिगत वा तन्मात्राधिगत हो सकता है।

जैब, अजैव निविशेष में, इस विश्व ब्रह्माण्ड में, अङ्गार-सञ्जात प्रत्येक सत्ता संरचना को, मन है। अर्थात्, प्रत्येक संरचना के साथ ही एक एक मन संयुक्त रहता है-कहीं व्यक्त रूप में, कहीं अव्यक्त रूप में। मन जहाँ व्यक्त नहीं है, वहाँ वित्त-कोषिक आच्छादनी (endoplasmic coverage) तैयार नहीं हुई है। और मन जहाँ व्यक्त है, वहाँ यह चित्त-कोषिक आच्छादनी रहेगी ही। मन रहने से ही, उसका अङ्गारात्मक और non Carbonic बाभोग रहना ही होगा। मानसिक आभोग जहाँ अङ्गारात्मक है, वहाँ मन की गति स्थूल की ओर अर्थात् जड़ाभिमुखी होगी। और मानसिक आभोग जहाँ non-carbonic की तरह है, वहाँ मन की गति सूक्ष्मत्व की ओर होगी। Non Carbonic मानसाभोग मनुष्य

के मन को अति मानस और आध्यात्मिक जगत् की ओर प्रधावित करता है। इसलिये प्रकृत आध्यात्मिक साधक अपने खाद्याखाद्य निर्वाचन के विषय में अत्यन्त सतर्क रहेंगे। अङ्गारात्मक आभोग मनुष्य के जैव आधार के अस्तित्व तथा पुष्टि साधन में सहाय्य करता है, और non carbonic आभोग मनुष्य की मानस-संरचना को मजबूत करता है। मनुष्य यदि अविवेचना के वशीभूत होकर त्रुटिपूर्ण अङ्गारजात खाद्य ग्रहण करता रहे। वह उसके मानसिक शक्ति त्रिकोण को भयानक रूप से विपर्यस्त कर देगा। उससे उसकी मानसाध्यात्मिक प्रगति अवरुद्ध होगी। कालक्रम से ऐसी एक अवस्था आयेगी जब मनुष्य के जैव आधार की मननशीलता प्रायः स्तम्भित हो जायेगी। पत्थर की अहल्या की पौराणिक गल्प की कहानी यहाँ स्मरण किया जा सकता है।

मनुष्य non-carbonic मानत आभोग से जितना दूर हो जाता है, उत्तरोत्तर जितना ही जड़ आभोग या अङ्गारात्मक आभोग में

डूब जाता है, उससे दो बड़े प्रकार के कुफल देखने को मिलता है। प्रथमतः उसके अपने जड़-आभोग के आधार की वृद्धि होगो, और मन क्रमशः धीरे धीरे और निश्चित रूप से स्थूल जड़ की ओर धावित होगा। द्वितीयतः उस मनुष्य का मन दूसरे के अङ्गारात्मक आभोग को ग्रास करना चाहेगा। यही है साम्राज्यवाद की (Imperialism) उत्पत्ति की मनस्तात्त्विक व्याख्या । अर्थात साम्राज्यवाद का उद्भव हुआ मनुष्य के मन में और वह मनुष्य के मानस जगत में कार्य करता जाता है। जब बाहरी जगत् में यह साम्राज्यवादी मानसिकता नाना रूप में प्रकट होता है- जैसे धनत'त्र, राष्ट्रीय धनत'त्र, अर्थनैतिक साम्यवाद, संकीर्णतावाद, समाजतंत्रवाद, साम्प्रदायिकतावाद, जातिप्राधान्यवाद, पुरुष-प्राधान्यवाद, भाषागत-साम्राज्यवाद इत्यादि इत्यादि । एकबार में एक वद्धिष्णु ग्राम में गया। वहाँ के स्थानीय अधिवासियों की मातृभाषा बंगला थी। किन्तु देखा-उत्सी ग्राम में प्राइमरी स्कूल में भी मातृभाषा बंगला के बदले हिन्दी पढ़ाई जा रही है। यह भाषागत

साम्राज्यवाद का एक ज्वलन्त उदाहरण है। ये सब हुये उत्ती साम्राज्यवादरूपी मानस-व्याधि का आकृति-प्रकृतिगत पार्थक्यमात्र।

इस मानसिक व्याधि के कारण एक वृहत् शक्ति (super power) अपने सकीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थ ते प्रेरित होकर दुर्बल राष्ट्र के ऊपर हमला करती है। उद्देश्य रहता है एक हो राजनैतिक, अर्थनैतिक, सामरिक स्वार्थ को कायम करना। एक साम्राज्यवादी शक्ति अन्यान्य सामाजिक-राजनैतिक अञ्चल के ऊपर प्राधान्य विस्तार करना चाहता है। शोषण करना चाहता है। एक शक्तिशाली भाषागत-गोठी अन्य लघु-संख्यक भाषागत-गोष्ठी को चापकर रखना चाहती है। समाज के तथाकथित उच्चवर्ण के लोग समाज के तथाकथित निम्नवर्ण के लोगोंको पैर के नीचे दबा कर रखना चाहते हैं और छल-बल-कौशल से उनके प्राण-रस निचोड़कर चूस लेना चाहते हैं। सुविधावादी पुरुषसमाज नानाप्रकार से नारी जातीय

अधिकार को न्यन करना चाहते हैं। एक ही बात सभी क्षेत्र में वही साम्राज्यवादरूपी अन्तानहित मानसिक व्याधि कार्य करता जाता है।

सा त्राज्यवाद स्पष्टतः मानवताविरोधी है। नव्य-मानवतावादी नीति तथा मौल-मानव नीति का विरोधीतत्व है, यह साम्राज्यवाद है। एक ही बात कही जाय तो साम्राज्यवाद मानव प्रगति के पक्ष में बाधास्वरूप है। इस साम्राज्यवाद से उत्पन्न होता है बड़ा बड़ा विश्व युद्ध, नाना प्रकार के भेदमूलक ध्वंसात्मक शक्ति।

साम्राज्यवाद अवश्य ही एक ऋणात्मक शक्ति है- एक ध्वंसात्मक विषय है। यह साम्राज्यवाद वैयष्टिक और सामूहिक जीवन में अन्याय, अविचार और शोषण का परिवेश तैयार कर डालता है। यह विषाक्त, कलुषित परिवेश में स्वाभाविक रूप से ऋणात्मक शक्ति का (जैसे अरातिसुलभ माइक्रोवाइटम) प्रादुर्भाव

होता है। अरातिसुलभ (शत्रु स्वभावका) माइक्रोवाइटम और सुत्स हत और सुसं बद्ध होकर मानव समाज के विभिन्न दिशाओं में साम्राज्यवाद के दानवीय कार्यकलाप की मात्रा को बढ़ा देता है। ललितकला, साहित्य, शिक्षा, व्यवसाय-वाणिज्य, कृषि, शिल्प, नैतिकता और सामाजिक सम्बन्ध में विभिन्न दिशाओं में उनके अशुभ प्रतिफलन घटता है। वे ऐसा एक भयावह सामाजिक वातावरण तैयार करते हैं, जिससे मनुष्य के मन में दासत्वबोध, हीनम्मन्यताबोध का सिलसिला बंधता है, असंस्कृति और मानसिक अर्थनैतिक शोषण का पथ प्रशस्त होता है। किसी किसी क्षेत्र में, इस कारण से, मन में एक प्रकार का प्रचण्ड नैराश्यवाद और सन्देहवाद की सृष्टि होती है।

तत्र, देखते हैं कि, साम्राज्यवादरूपी व्याधि मनुष्य के मन में जगद्दल पत्थर के समान चापकर बैठा है। इस सर्वग्रासी साम्राज्यवाद को दूर करने के लिये, एक नव्य नीति-चेतना (New

Ethics) का प्रयोजन है। और यह नव्य नीति-चेतना दो मूत्र तत्वों के ऊपर स्थित है (१) एक है- परम सार्वभौम सत्ता को अर्थात् परमपुरुष को जीवन का चरम और परम लक्ष्य के रूप में ग्रहण करना होगा। (२) अंगारात्मक या जड़ आभोग के साथ non carbonic आभोग का एक सुन्दर सामञ्जस्य और सुसंतुलित सामरस्य बनाकर रखना होगा। बाज के युग में यही हुई नव्य नीति-चेतसा । बहिर्जगत में और मनोजगत में आज जो सब सामाजिक व्याधि और मानसिक तथा शारीरिक रोग दीख पड़ते हैं, उनके निवारण का एकमात्र औषधि है, यही नव्य-नीति-चेतना। इसी नव्य-नीति-चेतना के सम्प्रयोग से मानव समाज की सर्वात्मक विमुक्ति होगी अपसारित होगा अर्थनैतिक शोषण, राजनैतिक निर्यातन, उपधर्मीय कुशिक्षा, सांस्कृतिक प्राधान्य प्रतिष्ठा तथा सामाजिक प्रमुख स्थापन का अप-प्रयास ।

कणिका में प्राउट- १०म खण्ड में है:- (१) मनुष्य का साहित्य और शिल्प साधना (२) नृत्य-वाद्य-गीत तोनों ही संगीत हैं (३) नन्दन विज्ञान और संगीत (४) संगीत और मोहन विज्ञान क्या अच्छेद्य है? (५) शिल्प और विज्ञान (६) शिवोपदेश।

कणिका में प्राउट

समाप्त

****************X****************

घोषणा

प्रउत (प्रगतिशील उपयोग तत्व) एक नया आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांत है, जिसे आनंद मार्ग प्रचारक संघ के धर्मगुरु श्री प्रभात रंजन सरकार उर्फ़ श्री श्री आनंदमूर्ति जी ने प्रतिपादित किया है। धर्मगुरु के रूप में वे मानव इतिहास में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए एक सिद्धांत दिया । उनके विचार 'प्रउत' पुस्तकों में अभिव्यक्त हैं ।

उन्होंने न केवल यह विचार दिया, बल्कि यह भविष्यवाणी भी की -- कि एक दिन अवश्य आएगा जब इस दुनिया के लोग इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

प्राउट को पढ़ें और दूसरों को भी इसे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें ताकि दुनिया के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और अन्य समस्याओं का न्यायसंगत समाधान मिल सके।

आज, मानव निर्मित समस्याओं के कारण दुनिया विनाश के कगार पर है। केवल प्राउट के सिद्धांतों को लागू करके ही समाज की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

प्रउत की नीतियों को लागू किए बिना इस विश्व को किसी भी तरह विनाश से नहीं बचाया जा सकता।

"प्रउत" को " प्राउट" भी कहते हैं, जो अंग्रेज़ी Progressive Utilisation Theory का संक्षेप PROUT है।

आप नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करके ऐसी कई पुस्तकें पा सकते हैं।

सूचीपत्र

www.anandamargaideas.com

यदि आपके कोई प्रश्न हों, तो आप पूछ सकते हैं।

आचार्य सत्यबोधानंद अवधूत

व्हाट्सएप नंबर: 8972566147